॥ हरिः ॐ ॥

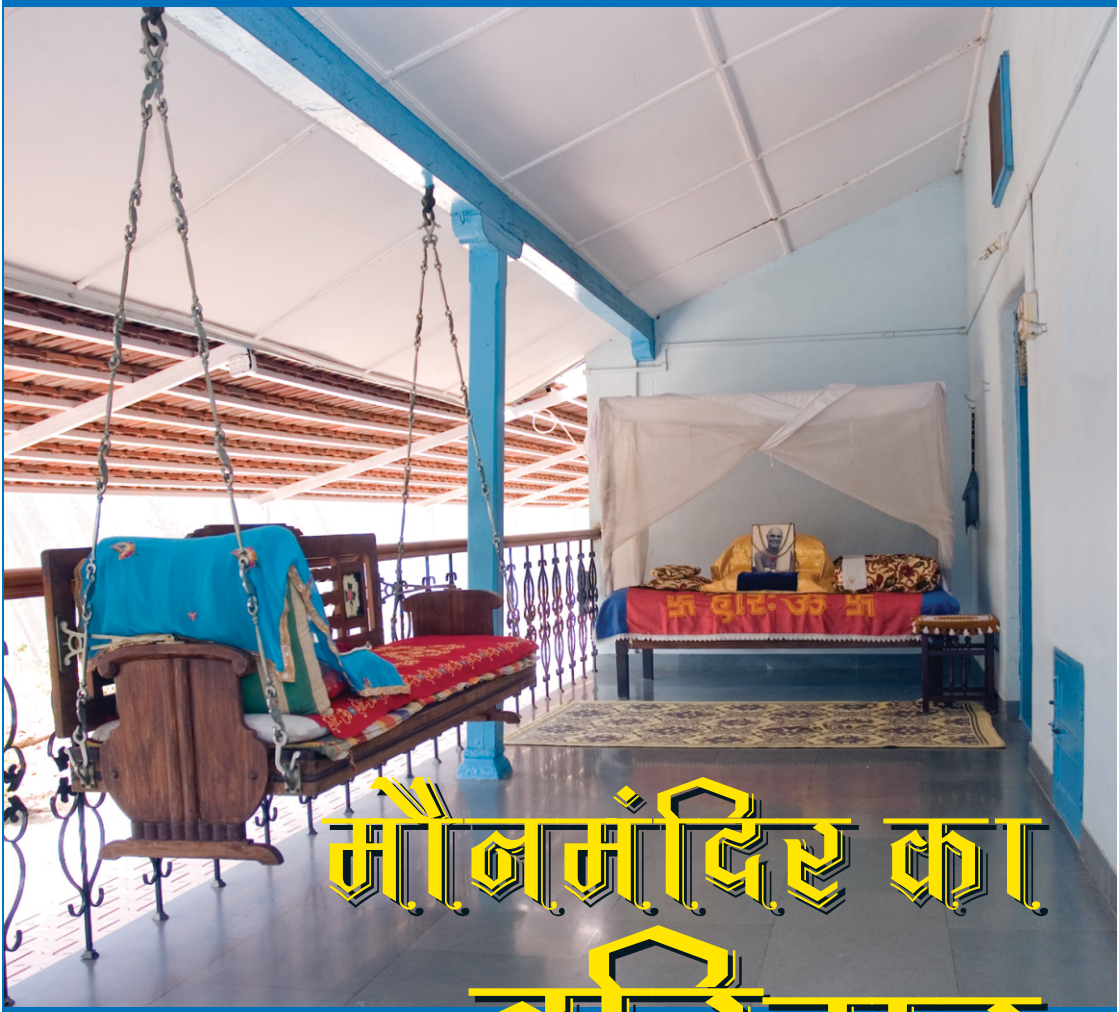

मौनमंदिर का हरिद्वार

पूज्य श्रीमोटा की मुक्तिदायक पावन वाणी (मौन-एकांत के साधकों के समक्ष)

– *पूज्य श्रीमोटा*

हरिः ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

॥ हरि:ॐ ॥

मौनमंदिर का हरिद्वार

पूज्य श्रीमोटा की मुक्तिदायक पावन वाणी
(मौन-एकांत के साधकों के समक्ष)

: संकलन :
रमेश म. भट्ट

: अनुवाद :
भास्कर भट्ट
रजनीभाई बर्मावाला 'हरि:ॐ'

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

❑ **प्रकाशक :**
हरि:ॐ आश्रम, जहाँगीरपुरा, कुरुक्षेत्र, रांदेर,
सुरत-३९५००५, भ्रमणभाष : +९१ ९७२७७ ३३४००
Email : hariommota1@gmail.com
Website : www.hariommota.org

© सर्वाधिकार - प्रकाशकाधीन

❑ प्रथम संस्करण : गुरुपूर्णिमा, वि. सं. २०७०

❑ प्रतियाँ : १०००

❑ पृष्ठ संख्या : १२+१३०=१४२

❑ मूल्य : रु. २०/-

❑ प्राप्तिस्थान :
(१) हरि:ॐ आश्रम, सुरत
कुरुक्षेत्र, जहाँगीरपुरा, सुरत-३९५००५

(२) हरि:ॐ आश्रम, नडियाद
पोस्ट बॉक्स नं. ७४, पिन-३८७००१

❑ अक्षरांकन : अर्थ कॉम्प्यूटर
२०३, मौर्य कोम्प्लेक्ष, सी.यु.शाह कॉलेज के सामने,
इन्कमटैक्स, अमदावाद-३८००१४,
फोन : (०७९) २७५४३६९९ , मो. ९३२७०३६४१४

❑ मुद्रक :
साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.
सिटी मिल कम्पाउन्ड, कांकरिया रोड, अमदावाद-३८००२२
फोन: (०७९) २५४६९१०१

॥ हरिः ॐ ॥

निवेदन

(प्रथम संस्करण)

पूज्य श्रीमोटा ने मौनएकांत के साधकों के अतिशय प्रेमाग्रह के कारण समय-समय पर अपनी पावन वाणी द्वारा उद्‌बोधन किया था । वह श्रेयार्थिओं के लिए बहुत प्रेरक और मार्गदर्शक साबित हुआ है । इसके उपरांत पू. श्रीमोटा की चेतनाशक्ति मौनएकांत के कमरों में जो गूढ़ कार्य करती है, उसके विषय में भी आपश्रीने उस उद्‌बोधन में स्पष्टता की है ।

इस पुस्तक का मुद्रणकार्य चतुरंगी मुखपृष्ठ सहित श्री श्रेयसभाई पंड्या, मे. साहित्य मुद्रणालय (प्रा.) लि. अहमदाबाद ने किया है। वे हमारे निटकवर्ती स्वजन हैं, उनका आभार मानने के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं ।

इस पुस्तक का मुद्रण, अनुवाद आदि कार्य बन सके उतनी सावधानी से किया गया है । फिर भी यदि कोई क्षति मालूम पड़े तो बिना संकोच कृपया हमें सूचित करें, जिससे आगे के संस्करण में सुधार हो सकें ।

इस पुस्तक के पढ़ने से मार्गदर्शन पाकर जिज्ञासु साधकजन प्रभुप्राप्ति के मार्ग पर आगे बढ़ें ऐसी प्रभुप्रार्थना है ।

दि. ४-११-२०१३ ट्रस्टीमंडल

नूतन वर्ष हरिः ॐ आश्रम, सुरत

सूचना : पू. श्रीमोटा के मुखारविंद से निकली इस वाणी में किसी भी प्रकार का परिवर्तन न करने की आपश्री की आज्ञानुसार उसे ग्रंथस्थ किया गया है । अतः इसे साहित्यिक दृष्टि से न देखकर इस परावाणी को भाव दृष्टि से देखकर आध्यात्मिक लाभ उठायें ।

हरिः ॐ

प्राक्कथन

अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

सृष्टिकर्ता के कार्य की हमारे हृदय में प्रतीति हो और उनका विभुत्व अनुभव हो, उसे आध्यात्मिक ज्ञान कहते हैं। हम सांसारिक भँवर में घूमते रहते होने से और जीवदशा के काम-क्रोध-रागद्वेष के चक्र में गहरे फँसते जाते होने से सतत प्रकाशमय सूर्य ज्ञानरूपी के दर्शन नहीं कर पाते हैं। फिर, हम स्वयं अज्ञानरूपी अंधकार में होने से उसे पार कर सकने में भी शक्तिमान नहीं हैं। इसलिए जिनके हृदयरूपी आकाश में परमात्मा का प्रकाश जगमगा रहा हो और निमित्तयोग से जो ऐसे प्रकाश को अन्य जीव में प्रगट कर सकने में समर्थ हो, ऐसे सद्गुरु द्वारा आत्मज्ञान रूपी अंजन हमारी आँखों में लगाया जाय तो प्रभु की झांकी होने की संभावना है। ऐसे सद्गुरु के स्थूल देह से भी अधिक उनका अक्षर देह क्रियाकारी होता है। क्योंकि उन्होंने द्वंद्वातीत और गुणातीत स्थिति प्राप्त कर ली होती है एवं वे सहजावस्था में स्थित होते हैं। सद्गुरु हमें जो शिक्षा देते हैं, अपनी वाणी के माध्यम से सद्गुरु जो ज्ञान देते हैं, वह अनंत काल तक जीवंत रहता है।

ज्ञान अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान - हरिकृपा से उस ज्ञान के द्वारा जीव, जगत और परमात्मा के संबंधों का रहस्य समझें और उस संबंध को जोड़ने वाली चेतना का हृदय में अनुभव करने की झंखना जागे। ऐसा अध्यात्मज्ञान का अनुभव करने हेतु श्रीमोटा ने अपनी पुस्तकों में क्रियात्मक मार्ग दिखाया है। पूज्य श्रीमोटा ने

अध्यात्ममार्ग का प्रयोगात्मक अनुभवदर्शन उन ग्रंथों में कराया है। फिर, आपश्रीने अपने अनुभवज्ञान से संसार के अनेक पहलुओं का वैज्ञानिक पृथक्करण किया है और अध्यात्ममार्ग का वैज्ञानिक दृष्टिकोण समझाया है ।

विज्ञान अर्थात् भौतिकशास्त्र का विशेष ज्ञान । इस प्रकार का विज्ञान श्रीहरि की अनंत सृष्टि का भौतिक ज्ञान का अलग-अलग भौतिकशास्त्रों द्वारा दर्शन कराता है । परंतु उस भौतिकदर्शन से जो आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त होनी चाहिये, इसके लिए भौतिकशास्त्र ज्ञान की दृष्टि से उसके अनंत पहलुओं से बाहर निकलने के लिए असमर्थ सिद्ध होता है । आइन्स्टाईन जैसा कोई विरल वैज्ञानिक ही यह कह सकता है ''भौतिकज्ञान के पथ पर उसके अनंत, अचूक, चौकस संशोधनों में डूबा हुआ वैज्ञानिक, भौतिक ज्ञानपद्धति से उस ज्ञान के पीछे रही हुई समर्थ प्रभुशक्ति का हमें ख्याल देता है । और इस गूढ़ प्रभुशक्ति के आगे कोई भी वैज्ञानिक का सिर झुके बिना नहीं रहता ।''

अध्यात्मशास्त्र के वाचन से जीवन का ध्येय और उस मार्ग पर जाने की अनेक दिशाओं का ज्ञान प्राप्त तो होता है, लेकिन प्रत्येक जीवात्मा को किस मार्ग पर जाय ? किस प्रकार की क्रिया द्वारा उस मार्ग पर गति हो सके ? यह तो उस मार्ग का जानकार ही बता पाएगा और श्रेयार्थी की प्रकृति को समझ सकता हो, ऐसे समर्थ सद्गुरु हो तभी यह संभव हो सकता है । ऐसे सद्गुरु अपनी स्थूल उपस्थिति दरमियान या बाद में उनके सूक्ष्म अक्षरदेह द्वारा या उनके भावस्मरण के परिणाम द्वारा जीवात्मा को प्रेरित करते होते हैं । इसके लिए जीवात्मा की अभिमुखता और जागृति के लिये तमन्ना पक्की हो तो ही यह जीवात्मा परिणाम प्राप्त कर सकता है। मुझे यह दृष्टिकोण अचानक संजोग से पूज्य श्रीमोटा के अक्षरदेह द्वारा प्राप्त हुआ और

उसे मैं मेरा सद्‌भाग्य मानता हूँ और प्रभुमंदिर के द्वार-हरिद्वार की मुझे धुंधली झांकी हुई है, इससे श्रद्धा दृढ़ हुई है।

मुझे ऐसे हरिद्वार की संपूर्ण झाँकी हुई है, ऐसा दावा मैं नहीं कर सकता हूँ। परंतु पूज्य श्रीमोटा का पार्थिवदेह परम चैतन्य में विलीन हुआ, उसके चार साल के बाद मैं उनके अक्षरदेह के संपर्क में आया और यह संपर्क मेरे हृदय में गहरा उतरा उसका अनुभव मैं कर रहा हूँ। यह मेरे अनुभव की मामूली बात नहीं है।

''पूज्य श्रीमोटाः जीवन और कार्य'', ''जीवनसंदेश'' ''जीवनदर्शन'' ''जीवनपगरण'' ''जीवनपगथी'' ''जीवनसंशोधन'' ''जीवनपोकार'' आदि गद्यग्रंथ एवं ''श्रीसद्‌गुरु'' ''निमित्त'' ''प्रेम'' और ''भाव'' ''मनने'' ''तुजचरणे'' ''हृदयपोकार'' इत्यादि पद्यग्रंथों ने मुझे पूज्यश्री के हृदयद्वार के पास पहुँचाया।

परम आत्मनिष्ठ पुरुष के अक्षर स्वरूप का कैसा प्रभाव होता है, उसे व्यक्त करके उसका कीर्तन करने निजी हकीकत और निवेदन में पेश करता हूँ। कुछ विपरीत समझ में आये तो वह मेरा दोष है। इसके लिए मैं पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। वैसे तो मैं १९७३ से अध्यात्म विषय के ग्रंथ पढ़ता था और उसमें मेरी गहरी रूचि भी थी। ''श्रीमद् भगवद्‌गीता'' ''श्रीमद् भागवत्'' ''पातंजल योगसूत्र'' श्रीमद् शंकराचार्य का ''विवेकचूड़ामणि'' ''आत्मबोध'' और आवश्यकता अनुसार तीन उपनिषदों का भी बार-बार उपयोग करता था। उपरांत भगवान श्रीरमण महर्षि, श्री अरविंद घोष और विवेकानंद के ग्रंथों को भी पढ़ता था। इस प्रकार के ग्रंथों के अभ्यास से आत्मज्ञान संबंधी जानकारी में वृद्धि तो हुई, परंतु क्रियात्मक मार्ग एवं अनुभव हो ऐसा परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। Transcendental Meditaion और बौद्ध धर्म की विपश्यना की पद्धति सीखने से भी संतोष नहीं हुआ था।

परंतु पूज्य श्रीमोटा ने १९५५ से मौनमंदिरों (क्रियात्मक प्रयोग शाला) की स्थापना की है ऐसा मैंने (इन मौनमंदिरों के लाभार्थियों के परिचय से) जाना । इससे मौनमंदिर में प्रवेश कर उसका लाभ लेने का निर्णय किया । पिछले तीन वर्षों से तीन बार यह प्रयोग करने के प्रसंग बने । अनेक सांसारिक कर्तव्यों के कारण उसका संपूर्ण लाभ लेने में विघ्न आते, फिर भी ऐसे अलग-अलग प्रयोगों से जीवनदर्शन और जीवनझाँकी होने का अनुभव हुआ है, ऐसा मुझे स्पष्ट लगता है ।

मात्र प्रयोगात्मक हेतु से मौनमंदिर में प्रवेश किया था, तब साधनक्रिया के बारे की जानकारी के अंतर्गत मैंने पढ़ा कि साधक को किसी भी प्रकार के विधिविधान, मंत्र, मूर्तिदर्शन के बारे में कोई भी सुझाव नहीं दिया जाता है । हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, इसाई कोई भी धर्म या पंथ के जिज्ञासु स्वयं की इच्छा के अनुसार मंत्र या मूर्ति को स्वीकार कर सकते हैं । यह सुझाव मुझे अत्यंत आकर्षक लगा । मौन में बन सके उतना अधिक समय ईश्वर के नाम का जप किया करना, जोर से या मन में, आवश्यक लगे तो उच्च स्वर से भजन भी गायें । किन्तु जिज्ञासु साधक स्वयं ऐसा प्रबंध करें । किन्तु अधिक से अधिक समय नामस्मरण में बिताना और ऊब जाँये तो आध्यात्मिक ग्रंथों का वाचन करना । सांसारिक विचारों को कम करने के लिए कम से कम सात दिन और अधिक से अधिक इक्कीस दिन के मौनएकांत का अनुष्ठान पूज्य श्रीमोटा के द्वारा स्थापित मौनमंदिर में हो तो श्रेयार्थी बहुत जीवनपाथेय पाता है, ऐसा अनुभव किया है ।

मौनमंदिर में प्रवेश करते ही विचारशील श्रेयार्थी को तो अपने मन का दर्शन हो जाता है । ऐसा होना यह आध्यात्मिक अभिमुखता

के लिए तैयारी है । पहले प्रवेश करते समय हमारे मन में रही हुई अनेक प्रकार की कल्पनाएं, अंधकार और एकांत का डर, शारीरिक एवं मानसिक आदतें, मन के अनेक विकार, हमारी मनोवृत्तियाँ - मनोभाव, प्राण की अनेक प्रकार की वृत्तियाँ, बुद्धि के खेल-क्रीड़ा आदि का स्पष्ट दर्शन होने लगता है । फिर प्रतिदिन सुबह-शाम पूजा, जप, आरती, देवदर्शन, ध्यान आदि क्रियाएँ करने से हम आध्यात्मिक मार्ग पर हैं और आध्यात्मिक ग्रंथों का पढ़कर उस पर उसके विषय में चर्चा करना या लेख लिखना यह आध्यात्मिकता है, यह मान्यता संपूर्ण भ्रांत है, उसकी स्पष्ट समझ पैदा होती है ।

ये सब भ्रांति तोड़ने के लिए जीवन के कौन से हेतु को लक्ष्य में रखकर प्रभु का नामस्मरण करें उस क्रियात्मक प्रयोग का अनुभव होता है । चित्त शुद्ध कैसे हो वह समझ में आता है । प्रभु का भाव क्या है, उसकी झाँकी होती है । **संसार यानी प्रभु की पाठशाला एवं प्रयोगशाला ।** संसार का असली स्वरूप देखने के लिए इन दोनों दृष्टिओं को रखनी चाहिये । इससे संसार की समस्याओं का समाधान होता है । इससे जीवन में शांति का अनुभव होता है । जप, ध्यान, नामस्मरण, प्रार्थना, त्राटक, आत्मनिवेदन आदि साधनों के बारे में उनके अनेक पहलुओं के बारे में पूज्य श्रीमोटा ने बहुत गहरी समझ दी है । इन साधनों को हम जानें यह एक बात है और आचरण करना दोनों के बीच बड़ी दरार है, किन्तु उसमें से पार होने के लिये अभ्यास, श्रद्धा, धैर्य, हिम्मत, तनादिही आदि गुणों को विकसित करके किस तरह आचरण कर सकते हैं, यह पूज्यश्री ने प्रेमपूर्वक समझाया है । उन्होंने ऐसी ही बात विस्तृत रूप से गुणों के बारे में की है, अन्यथा आध्यात्मिक मार्ग में टिकना कठिन है ।

ये सभी क्रियाएँ और अंतरसूझ मौनमंदिर में सहजरूप से होती

है । पूज्य श्रीमोटा की अतिसूक्ष्म उपस्थिति का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है । मेरे मन तो मौनमंदिर हरिद्वार है । प्रयोगात्मक रीति से जीवन को विकसित करने की जिज्ञासा और उत्साह उद्‌भव हो तो आगे बढ़ सकते हैं । ''दहकते ज्वालामुखी'' के समान तमन्ना और जिज्ञासा के बिना ऐसा अनुभव सतत नहीं हो सकता है, ऐसी मुझे प्रतीति हुई है ।

पूज्य श्रीमोटा की प्रेरणा से ही इस पुस्तक के प्रकाशन का कार्य साकार हो सका है । श्रीमोटा के कर्मयोग की सजीव मूर्ति के समान आदरणीय श्री नंदुभाई ने इस कार्य को पूरा करने के लिए समर्थन दिया और उन्होंने मेरी भावना को स्वीकार किया, इसके लिए मैं उनका सप्रेम आभारी हूँ । इस कार्य के कारण श्री रमेशभाई भट्ट से परिचय हुआ, उसका भी आनंद व्यक्त करता हूँ ।

अंत में पूज्य श्रीमोटा को शक्ति और कृपा के लिए प्रार्थना करते हुए विराम लेता हूँ ।

''हरिनाम को चित्त में बसा ले तू
हृदय में श्रेय और प्रेय दोनों साध लो
सदैव प्रभु आश्रय में लीन रहकर
बिना स्मरण तू एक पल न गँवाना ।

शरत छोटुभाई देसाई
इची फार्म मु. पारनेरा-पारडी
जि. वलसाड (गुजरात)
फरवरी १९८३.

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	मौन-एकांत का कार्य	१
२.	भगवान का भक्त	१२
३.	भगवान का नामस्मरण	१४
४.	काया की करामात और मन की मरम्मत	२०
५.	हरि:ॐ आश्रम का कार्य	२७
६.	शब्द की शक्ति	३३
७.	अखंड आनंद की शोध	४१
८.	ऋषिमुनियों का उपहार	५२
९.	मन महाराज की सहाय	५८
१०.	अंत:करण की शुद्धि	६७
११.	संसार में सुख	७६
१२.	स्वभाव का रूपांतर	८१
१३.	अंत समय आये तब	८७
१४.	'कर ले शृंगार'.....	९४
१५.	भावना का महत्त्व	१०३
१६.	शब्द में प्राणप्रतिष्ठा	११०
१७.	शांति-प्रसन्नता की प्राप्ति	११६
१८.	'रखे लाज हमारी'	१२२

॥ हरिः ॐ ॥

मौनमंदिर का हरिद्वार

❑

– मोटा

‘मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ !’

– मोटा

॥ हरिः ॐ ॥

१. मौन-एकांत का कार्य

चेतन का स्वरूप

चेतन व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप में है । ज्ञानी और योगियों में वह पक्षपाती है । चेतन में जिसका दिल प्रेमभक्तिपूर्वक मिल गया है, उनमें प्यार करके प्रेम से साक्षात् दिखता है । चेतन सब में है । जिसकी जैसी भूमिका हो, वह उस प्रकार व्यक्त होता है । बिजली का उदाहरण मौजूद है, पाँच वोल्ट का बल्ब हो तो उतना ही प्रकाश देता है, १०० वोल्ट का हो तो उसके अनुसार । बिजली भी उस तरह की शक्ति है । उसका मीटर रखा जाता है, यदि उससे ज्यादा लोड लोगे तो खराब हो जायगा । उसका प्रवाह हलका करने के लिए ट्रान्सफोर्मर लगाये जाते हैं ।

चेतन का प्रवाह

चेतन का प्रवाह अव्यक्त की भूमिका पर नहीं समझा जा सकता है । चेतन के साकार होते ही तुरंत हम उसे स्वीकार कर सकते हैं । साकार इसलिए कि संपूर्ण ब्रह्मांड की तुलना में तो पृथ्वी अत्यंत सूक्ष्म है । ब्रह्मांड़ पृथ्वी, नक्षत्र, तारामंडल, सूर्य इत्यादि मिलकर बना है । यह सब एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं । जो सदैव उसके पीछे घूमा करता है, ऐसा दूसरा समूह हमारे साथ जुड़ा हुआ हो फिर वह दूसरे के साथ जुड़ा हुआ होता है । ऐसे १५-२०-५० का समूह एक दूसरे के साथ जुड़े हुए होते हैं । प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग है, फिर भी समाज के साथ एक या दूसरी रीति से जुड़ा हुआ है । वह अलग होने पर भी स्वतंत्र नहीं है । स्वतंत्र दिखता होने पर भी स्वतंत्र नहीं है । उसे समाज, समय,

स्थिति, परिस्थिति के अनुसार बरतना पड़ता है । इस तरह सब एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं । यह हकीकत सामान्य बुद्धि से सच्ची लगे ऐसी हैं ।

व्यक्त चेतन

चेतन भी अव्यक्त से व्यक्त हुआ - वह स्वयं अपने आप व्यक्त हुआ है । चेतन ने आकार स्वरूप धारण किया । जैसे-जैसे लोग चेतन उस प्रकार से उनमें तादात्म्य होता गया ।

हमारे शास्त्रों में १४ योनि कही गई हैं । देव, पशु, जलचर, प्रेत, मनुष्य इत्यादि । चेतन वृक्ष में वृक्ष रूप से, आकाश में आकाश रूप से - इस तरह प्रत्येक में वह स्वरूप-तद्रूप होकर मिल गया । उसमें कोई फेर-बदल नहीं है । मनुष्ययोनि में वह प्रकृतिरूप हो गया । प्रकृति के साथ शरीर में पुरुषतत्त्व भी होता है । वह पुरुषरूप से सुषुप्त अवस्था में पड़ा है, Subconscious । वह प्रकृति के आधार से कार्य कर रहा है । प्रकृति द्वंद्व और गुण की बनी हुई है । चेतन सतत गतिशील है। हम कर्म में रहते हुए भी अलग हैं। यह स्थिति हम जान सकते हैं और हम कर्तव्यपरायण रहते हैं । संसार में बल, साहस, सहनशीलता, शक्ति, त्याग आदि गुणों की आवश्यकता है । हम वह किस तरह प्राप्त कर सकते हैं ? मनुष्य उसे किस तरह प्राप्त कर सकता है ? कर्म के बिना गुण और शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है । मनुष्य की बुद्धि प्रसंग के कारण ही सतेज बनती है। यदि कोई समस्या, उलझन, कठिनाई आती है, तभी हम सोचते हैं और जब बुद्धि को काम में लगाते हैं, तभी उसका हल प्राप्त होता है। इसलिए कर्म तो साधन है। कर्म को उत्तम से उत्तम तरीके से करने से गुणशक्ति खिलती है।

कर्म का महत्त्व

शरीर के निर्वाह के लिए कर्म है, किन्तु यदि स्वार्थ की भूमिका से कर्म करोगे तो उसमें ही बंधे रहोगे । ऐसा कर्म भावना प्रदर्शित नहीं करेगा । उससे गुणशक्ति विकसित नहीं होगी । सदैव कर्म करो तो इस तरह करो कि गुणशक्ति ज्यादा से ज्यादा विकसित हो । कभी कर्म से बंधोगे नहीं, कर्म से लेपायमान न होंगे तो कर्म सर्वोत्तम हो सकते हैं । गुत्थी, समस्या हल करने में बुद्धि समर्थ बनती है । बुद्धि प्रज्ञा होगी तो ये कर्म सर्वोत्तम होंगे ।

कर्म करने की रीति

महात्मा हो गये हों फिर भी उन्हें कर्म करने पड़ेंगे । कर्म की अवमानना करने वाले भक्ति करने के लायक नहीं हैं । जिसमें कर्म करने की हिम्मत, साहस, पुरुषार्थ नहीं है, वह भक्ति भी नहीं कर सकेगा । भक्ति की असली नींव पुरुषार्थ में है । **पुरुषार्थ यानी पराक्रम, शौर्य, स्थिरता इत्यादि गुणों का समूह ।** इसलिए कर्म इस तरह करो कि जिससे हम लद न जाँय या उसका भार न लगे । यदि कर्म करने से आपको हलकापन न लगे तो गुणशक्ति खिलेगी नहीं और कर्म भी उत्तम नहीं होगा । शांति और प्रसन्नता भी नहीं मिलेगी ।

कर्म सभी के लिए ज़रूरी साधन है, किन्तु वह इस तरह से होना चाहिए कि शांति, प्रसन्नता टूटनी नहीं चाहिए बल्कि कर्म करने पर उत्तम से उत्तम रीति से बना रहे तो गुणशक्ति विकसित होगी । जो भी कर्म करें वह निरासक्त-निरामय भाव से करें, जिससे सत्त्वगुण प्रगट हो और उस तरह कर्म करने से उसके बोझ से हम लदे नहीं जायेंगे ।

मनुष्यदेह का प्रयोजन

पहले मनुष्य को मनुष्यत्व का भान होना चाहिए। मनुष्यशरीर का क्या प्रयोजन होना चाहिए, उसका ज्ञानमान जागृत होना चाहिए। देवयोनि उत्तम है, फिर भी मनुष्यजन्म उत्तम; कठिनता से प्राप्त होनेवाला कहा गया है। तो ऐसा क्यों कहा गया है ? क्योंकि मनुष्यजन्म से ही ज्ञान उत्पन्न होता है। मनुष्ययोनि में द्वंद्व की रचना है। यानी एक दूसरे से विपरीत युग्म-सुख-दुःख, लाभ-गैरलाभ, अनुकूल-प्रतिकूल, सत-असत इत्यादि एक दूसरे से विपरीत हैं, ऐसा ज्ञान मनुष्य-योनि में ही हो सकता है। इससे समझ आती है। सीधी स्थिति में कभी समझ आ सकती है ? देवयोनि में इतना सुख प्राप्त होता है कि वहाँ समझ नहीं प्रगट होती। **जहाँ घर्षण है, वहीं बुद्धि विचार करने लगती है।** किसी व्यक्ति के साथ समतापूर्वक बहुत व्यवहार किया हो और फिर किसी कारणवश घर्षण हो जाय तो वह हमारे पर एकदम क्रोधित हो जाता है। जब घर्षण होता है, तब वह कैसा है और था उसके विचार आते हैं। इसलिए द्वंद्व की रचना समझ पैदा करने के लिए है। ऐसी रचना केवल मनुष्ययोनि में ही है। चेतन को समझ सके उसके लिए कर्म है, किन्तु वह निरासक्त, निरहंकारी, निर्ममत्वभाव से किया जाय तभी संभव है। यह तो कोई रामकृष्ण परमहंस, नामदेव जैसे संत लोग ही उस प्रकार से कर्म कर सके हैं।

प्रभुस्मरण के साथ कर्म

सामान्य मनुष्य के लिए उस प्रकार कर्म करना एकदम संभव नहीं है। इसलिए सभी कर्म प्रभुप्रीत्यर्थ, ईश्वर को समर्पण करके,

उसका स्मरण करते-करते करें । सभी क्रिया ईश्वर को याद करते-करते प्रभुप्रीत्यर्थ करोगे तो सदैव उसका अनुसंधान रहेगा । उस प्रकार प्रभुप्रीत्यर्थ कर्म करने से अनासक्त, निर्मोही बन सकोगे । ईश्वर को भोग लगाये बिना कुछ मत करो । ऐसा करने से ऐसी एक प्रक्रिया उत्पन्न होगी । लगातार स्मरण में लगे रहने से जड़ रीति से कर्म में फँसना नहीं बनेगा । इस प्रकार भगवान का स्मरण करते -करते उसे समर्पण करते-करते कर्म करेंगे तो रागद्वेष से मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे ।

कर्म के लिए ताज़गी

शरीर के पाँच करण हैं—मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् । फिर अलग-अलग जीवों के साथ संबंध रखना पड़ता है । अनेक प्रकार की प्रकृत्ति और अनेक प्रकार के स्वभाव वाले के साथ काम पड़ता है और कई प्रकार के मनमुटाव होने के कारण प्रसन्नता भंग होती है, शांति नहीं बनी रहती । स्थूल रीति से कर्म करने के लिए भी ताज़गी चाहिए । आप कर्म अवश्य करते रहें, लेकिन उसे भी योग्य रूप से करने के लिए ताज़गी की लगातार आवश्यकता रहेगी, इसे तो मान्य कर सकें ऐसी बात है । अलग-अलग त्यौहार, पर्व इत्यादि दिनों में मनुष्य शांति पाता है और आनंद करता है । उस दिन वह कोई कर्म नहीं करता है । कोई सोता है और कोई घूमने-फिरने जाता है । कोई प्रभु का स्मरण करता है । इस तरह अलग-अलग प्रकार से ताज़गी प्राप्त करने के प्रयत्न करते हैं । ताज़गी अपने आप प्राप्त नहीं होती है । फिर से कर्म करने के लिए ताज़गी मिले,

उसके लिए पर्व-त्यौहार हैं । यह हम भूल गये हैं । कई विशेष योग्यतावालों ने मौनएकांत का सेवन किया । इससे ताज़गी मिलती है । कर्म उत्तम प्रकार से करने की शक्ति और कला भी खिलती है ।

पश्चिमी देशों के लोगों ने इस हकीकत को हमसे अधिक समझा है । उन लोगों ने (Hill Station) पर्वतीय स्थानों की रचना की । हमारे यहाँ भी पहले मंदिर पहाड़ों पर बनाये जाते थे ।

बड़े अधिकारियों के गेस्टहाउस-रेस्टहाउस देखिये । शान्ति मिले, अलग-अलग रह सकें वैसे होते हैं । उसका मूल हेतु तो ताज़गी प्राप्त करने का ही था । यह ताज़गी मौनएकांत से प्राप्त कर सकते हैं । यह ताज़गी मौनएकांत से प्राप्त कर सकते हैं, ऐसा अनुभविओंने प्रयोग करके सिद्ध कर दिखाया । उन्होंने देखा कि लोग कर्म के भार से-बोझ से लदे हुए हैं । उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए मौनएकांत की अधिक आवश्यकता है । इससे विशेष यह भी देखा कि मात्र मौनएकांत से घर्षण शांत नहीं होता । इसलिए उन्होंने कहा कि मौनएकांत के साथ ऐसा साधन भी साथ लो कि जिससे मौन-एकांत की शांति, तटस्थता, समता प्रकट हो । इसके लिए मौन-एकांत के साथ प्रार्थना, भजन आदि भी साथ में रखोगे तो ताज़गी अधिक प्राप्त होगी ।

अभ्यास के लिए एकांत

हमारे मन आदि करणों में रहे द्वंद्व को दूर करने के लिए और चेतन प्राप्त करने के लिए लगातार और दीर्घकाल तक का ऐसा अभ्यास चाहिए । शायद ही कोई जीवात्मा ऐसी ज्वालामुखी-जैसी दहकती उत्कट भावनावाला होगा ।

कोई भी व्यक्ति वर्ष में एक महीना पंद्रह दिन उत्तम प्रकार का सात्त्विक साधन करेगा, तो वह भी ताज़गी प्राप्त करेगा और बलवान होगा । किसी भी क्षेत्र के लिए (राजकीय भी) ताज़गी की आवश्यकता है । मैंने यह मौनएकांत का प्रारंभ किया है, इसलिए मैं नहीं कहता हूँ, लेकिन विशेषज्ञों का भी इसके लिए ऐसा ही अभिप्राय है ।

अमेरिका की सरकार ने एक अधिकारी को स्वीट्ज़रलैन्ड भेजकर उस का अभिप्राय लिखवाया है । अधिकारी ने लिखा है कि 'ताज़गी प्राप्त करने के लिए एक महीने तक एकांत स्थल पर रहना चाहिए ।' लेकिन मैंने तो उससे पहले ये प्रयोग प्रारंभ किये थे । अमेरिका के अधिकारी का अभिप्राय पढ़कर मुझे आनंद हुआ । कर्म से विमुख होकर इस प्रकार मौनएकांत में रहने का प्रयोग करें । एक बार प्रयोग करके तो देखें । विशेष ताज़गी प्राप्त होगी । यह तो स्थूल प्रकार का प्रयोग है ।

बोझ हलका कैसे हो ?

अनुभविओं-शास्त्रकारों ने कहा है कि ऐसा साधन लो कि जिससे बोझ हलका हो जाय । शरणागति करें । भगवान की शरण में जाइए । हम सब बोलते हैं, लेकिन जीभ से बोलते हैं । हमारे में परंपरागत संस्कार की छाया है, इसलिए बोलते हैं, लेकिन हमें न तो शरणागति के योग के लिए श्रद्धा है या नहीं उसका अनुभव । यह तो परंपरागत बोलते हैं ।

मौनमंदिर में स्वरूपशोध

इसके लिए तो लगातार अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता है और दहकती तमन्ना चाहिए । ऐसी भूमिका विकसित करने के

लिए यह साधन है । प्रति वर्ष बैठो तो बैटरी चार्ज हो सकती है। मौनमंदिर के अंदर अनेकों को अच्छी भावना जागृत होती हैं । बाहर ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय अपने कर्मों में व्यस्त रहती हैं, इसलिए चेतन का विचार या कल्पना भी नहीं आती है । जबकि यहाँ (मौनमंदिर में) उस प्रकार की भावना खिलती है । **यहाँ अंदर अकेले होते हैं । इसलिए बाहर समाज के वातावरण के भय से जिस वृत्तिओं के ऊपर दबाव रहा होता है, वे वृत्तिओं का तूफान आता है । सच्चा साधक हो तो समझ लेता है कि मुझे इससे विमुख होना है । मौनमंदिर के अंदर हमें अपना सच्चा स्वरूप समझ में आता है ।**

स्वयं का अनुभव

मनुष्य किस प्रकृति का है, वह हम तुरंत समझ जाते हैं । प्रकृति का निरीक्षण अनेक प्रकार से होता है । समाज की रचनात्मक सेवा का कार्य बीस साल तक किया है । तब लोग कहते थे ''भगत बहुत काम करते हैं ।'' अनेक प्रकार की प्रकृति हैं । उसका निरीक्षण करना और ऐसा करते हुए सब के साथ समता बनाये रखना, उसमें भगवान की कला का दर्शन करना वह भी साधारण बात नहीं है । हमें ऐसे ही जीवन का महत्त्व समझ में नहीं आया है । यह जीवन उत्तम प्रकार का है यह सामान्य रीति से समझ में नहीं आता है । इसलिए यह कर्म तो चेतनात्मक है । तो कर्तव्य-परायणता कैसे छोड़ सकते हैं ?

कर्म के लिए तो विवेक जरूरी

इसलिए तो मेरे पास आनेवाले को कर्म छोड़ने को नहीं कहता हूँ । उसके लिए भी विवेक होना चाहिए । किस प्रकार के कर्म

करने चाहिए और किस कर्म में हमारा विशेष हित रहा है, वह समझना चाहिए। इस मनुष्यदेह में चेतन बसा हुआ है। उस चेतन को प्रगट करने के लिए ही कर्म है, इसका ख्याल रखना चाहिए। इसके सिवा हमें कोई भी बात स्वीकार नहीं है। लोगों को कहना हो वह भले कहें। चेतन के मार्ग पर गया हुआ कुछ भी नहीं छोड़ सकता है।

जगत मिथ्या है ऐसा कहा जाता है। चेतन की दृष्टि से यह सत्य है, लेकिन जिसे चेतन का अनुभव नहीं है, उसे जगत का यथार्थ दर्शन भी नहीं होता है। चेतन का अनुभव करने वाले और प्रकृति के द्वंद्व में उलझे हुए व्यक्तिओं के दर्शन में फर्क है। चेतन तो ब्रह्ममय है। इसलिए वह व्यक्ति कर्मपरायण न रहता हो तो उसकी बात गलत है।

कर्म यज्ञ कब समझा जाय ?

कर्मयज्ञ तो सब से बड़ा यज्ञ कहा गया है। संसार में स्वार्थ रहा है। उसमें भी **अहंकाररहित, ममत्वरहित, प्रभुप्रीत्यर्थ जो कर्म होते हैं, वे कर्म यज्ञरूप हैं।** मन की द्विधावृत्ति न रहे उस प्रकार कर्म करने चाहिए। लाखों रुपये खर्च करके यज्ञ करेंगे वह उपयोग में नहीं आएगा। जो उपयोग में आये वही सच्चा यज्ञ। धन यह भी बड़ी से बड़ी शक्ति है। गुण यह भी शक्ति हैं। **गुणशक्ति के लिए भगवान का स्मरण करना वह सब से बड़ा यज्ञ है।** हमने यहाँ पर वही यज्ञ प्रारंभ किया है। कई लोगों को अंदर शांति मिलती है, सच्ची सूझ आती है। जीवन में संघर्ष पाया हो और कर्म के प्रति जिसकी भावना नहीं होती है, उसको यहाँ भावना प्रगट होती है–यह शत प्रतिशत सच्ची बात है। सेवा

क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति दो-चार दिन यहाँ रहकर देखें । यह ऐसा ज्ञान है कि जिसे बिना अनुभव के समझ में नहीं आ सकता है।

अनोखा प्रयोग

इस प्रकार का प्रयोग हिन्दुस्तान में किसी भी स्थान पर नहीं हो रहा है। मेरे गुरुमहाराज ने मुझे यह अनोखा प्रयोग दिखाया है। प्रयोग करके देखिये । मेरे कई पुराने साथी कहते हैं कि आप तो फिसल गये । मैं उन्हें भी सच्ची बात कहता हूँ कि प्रयोग करने के लिए दो-चार दिन रह कर देखो तो समझोगे ।

बाहर जो हकीकत किसी भी दिन प्रकाशित नहीं होती, वह यहाँ सात दिन में प्रकाशित हुई है । वह जिस तरह प्रकाशित हुई है, वैसी कभी भी प्रकाशित नहीं हुई है । हमें मिले हुए कर्म भी उत्तम रीति से करने के लिए भी मौनएकांत की आवश्यकता है, यह केवल प्रयोग करने से ही समझ में आएगा ।

सच्ची समाजसेवा

परसों एक कॉलिज का विद्यार्थी आया था । उसने मौनमंदिर में रहने के लिए कॉलिज में कुछ दिनों के लिए नहीं जाने की तैयारी दिखाई । मैंने उससे कहा, ''तुम कॉलिज के विद्यार्थी हो, पढ़ाई छोड़ो यह योग्य नहीं है । कर्म की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । हम तुम्हारे लिए सरलता कर देंगे । तुम्हें पहले मौका देंगे ।'' तब उसने कहा ''यदि मैं बीमार होता तो क्या करता ?'' एक मौनार्थी के मोहल्ले में यह विद्यार्थी रहता था । ऐसा मन एक दूसरे को देखकर होता है। मैं तो किसी से इस बारे में कोई बात नहीं करता हूँ, किन्तु यह समाज की सेवा है ।

गुलाब की सुगंध

व्यक्ति मौनमंदिर के अंदर रहता है। अंदर अकेले ही रहना पड़ता है, इसलिए अपने आप मालूम पड़ता है। गुलाब की सुगंध अपने आप ही फैलती है। उसे प्रचार की आवश्यकता नहीं होती है। कौतूहल होता है। भावनावाला विचार करता है और स्वयं बैठने आता है। स्वयं में ही पैदा हो यही सच्चा प्रचार है। मौनमंदिर में मनुष्य की भावना उच्च स्तर पर विकसित होती है — प्रगट होती है।

मौन द्वारा शक्ति

मैं ६ बार जेल में गया हूँ और सब बड़े सेवकों के साथ ही रहता था, किन्तु किसी के साथ एक शब्द भी नहीं बोलता था। मैं तो अपना ही कर्म करता था। सब लोगों की प्रकृति का वहाँ भी दर्शन होता था। यह देखकर सोचता था कि ऐसे लोग किस तरह अहिंसा का पालन कर सकेंगे ? **रागद्वेष की भूमिकावाले अहिंसा का पालन नहीं कर सकते।** ऐसा देखता-जानता फिर भी मैं तो मौनपालन ही करता। आज मेरा शरीर ६२ वर्ष का हुआ है, यह हकीकत है। मौन से शक्ति संभलती है। उसका यह भी एक प्रमाण है। महात्मा गांधीजी सप्ताह में एक दिन - कदाचित् दो दिन मौन रखते थे। जिस आत्मा का जिस कार्य के लिए जन्म हुआ है वह वही कार्य करे। उन्होंने कहा, ''मेरा जन्म स्वराज्य के लिए हुआ है।'' वे मौन को उत्तम साधन समझते थे। इसलिए, समझदार और जिसे मौन की शक्ति पर विश्वास होगा, वही इस साधन का उत्तम उपयोग कर, इसके द्वारा शक्ति प्राप्त कर सकेगा।

दिनांक ११-१०-१९६०

हरि:ॐ

२. भगवान का भक्त

भक्त किसे समझेंगे ?

''भगवान तो पक्षपाती है। वे दूसरे जीवों को सहाय नहीं करते है।'' ऐसी हमारी समझ सांसारिक दृष्टिकोणवाली है। संसार-व्यवहार में भी माँ होती है, वह भी अपने संतान की टट्टी पहले साफ करेगी, बाद में दूसरों की, उसी तरह अपनी संतान तूफान करे, परेशान करे, तो वह सब सहन कर लेगी। उसी प्रकार जो भगवान का भक्त होता है, जिसकी सभी वृत्तियाँ भगवान में मिल गई हैं, जो भगवानमय हो गया है, जिसकी बुद्धि के अनेक प्रकार के विकल्प खत्म हो गये हैं, जिसके प्राण में से आशा, कामना, लोलुपता इत्यादि खत्म हो गये हैं और जिसके प्राण में चेतन की लगन लग गई हो और जिसका चित्त द्वंद्वातीत और गुणातीत हो गया है - वैसे भक्त के कार्य भगवान अवश्य करते हैं।

भक्त का योगक्षेम

जब चित्त से नकारात्मक संस्कार दूर हो जाते हैं और एकमात्र भगवान की लगन लगती है, तब हम शरण के योग्य कहे जायेंगे। कोई वस्तु पृथ्वी के वातावरण से बाहर निकल जाती है, उसे गुरुत्वाकर्षण के नियम लागू नहीं होते हैं। अवकाश में जाने के बाद उसे गुरुत्वाकर्षण लागू नहीं पड़ता। इसी तरह हमारा जीव चेतनात्मक स्थिति में प्रगट होता है, तब अपने आप नवरचना चलती रहती है। जिस तरह 'फोर्थ डायमेन्शन' के नियम में जो है, उसे 'थर्ड डायमेन्शन' के नियम लागू नहीं पड़ते। इस तरह चेतन में निष्ठा पाया हुआ **जीव** 'फोर्थ डायमेन्शन' के नियम के

अंदर होता है, उस पर 'थर्ड डायमेन्शन' के नियम लागू नहीं हो सकते । संसार के व्यवहार में भी हम एक-दूसरे के मित्र होते हैं तो मित्र का काम पहले करते हैं, दूसरों का काम इतनी तत्परता से नहीं करते हैं और उतना उत्साह भी नहीं होता है । इसी प्रकार जिसे उसकी लगन लग गई है, जो उसकी शरण गया है, वैसे उसके भक्त का योगक्षेम वह वहन करता है ।

जब कोई जीवात्मा चेतन में निष्ठा पा जाता है, तब उसके संकल्प पूरे होते हैं । फिर भी उसमें फर्क है - स्वंय के लिए किये हुए संकल्प पूरे होते हैं, लेकिन दूसरों के लिए पूरे नहीं होते हैं ।

दिनांक ४-१०-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

३. भगवान का नामस्मरण

संसार में हमारा सभी व्यवहार शब्दों से चलता है, यह हम सब स्वीकार करेंगे । शब्दों में जैसी ध्वनि होगी वैसे आंदोलन उठेंगे । यदि शब्दों में प्यार-प्रेम होगा तो हमारे ज्ञानतंतुओं में ऐसे आंदोलन उठेंगे । जिस तरह शब्द बोले जायेंगे — उसमें जो भाव होगा — वैसे आंदोलन हमारे ज्ञानतंतु पर उठेंगे । यह सब अहम् का आधार लेकर होता है । फिर वह शब्द भी अहम् द्वारा बनाया होता है, जीव द्वंद्वात्मक है ।

परंपरागत संस्कृति : नामस्मरण

चेतन को जागृत करना हो तो ज्ञानतंतु पर उसी प्रकार के आंदोलन देने चाहिए । इसके लिए भक्तों ने-अनुभविओं ने अलग अलग साधन बतायें । उसमें भी आबालवृद्ध सब कोई कर सके ऐसा सरल साधन वह भगवान का नाम है । कितने ही युगों से नामस्मरण के बारे में भावना प्रगट हुई है । उसमें मानने या न मानने जैसी स्थिति नहीं है । यह मानना पड़े ऐसा ही है । इसके संस्कार का जोर हमारी रगरग में फैला हुआ है । जैसे संतान में उसकी माता या पिता का स्वभाव आता है, जिसे अनुभव से, निरीक्षण से, पृथक्करण द्वारा समझ सकते हैं वैसी हकीकत है, वैसे नामस्मरण की भावना की भी परंपरागत एक संस्कृति है । उसका बल रक्त में उतरता ही है । संस्कार द्वारा और वातावरण द्वारा वह जोर करता ही है ।

शब्द की शक्ति

शब्द से मंथन, भावना और मनोभाव उत्पन्न होते हैं । यह भावना प्रकृति से उल्लंघन की है । इससे ज्ञानतंतु पर के और

आधार पर के आंदोलनों को प्रकृति से परे होने की जिज्ञासा हममें उत्पन्न होती है । इसके लिए अनुभविओं का अनुभव है कि शब्द के पीछे का जैसा धक्का वह वैसा कार्य करता है । शब्द के पीछे सर्वोत्तम चेतनात्मक भावना प्रगट होती है, तो आधार को नींव से बदल सकती है ।

उच्चतर भावना से नामस्मरण

भगवान का स्मरण शब्द में है । वह शब्द से पर्याप्त है; फिर भी शब्द से परे है । वह द्वंद्व और गुण में समाया हुआ नहीं है। किन्तु उससे परे है । प्राण में से उस शब्द की धड़कन प्रगट होती है । प्राण शुद्ध हुआ नहीं होने से योग्य प्रकार का उठाव नहीं हो सकता । भगवान के स्मरण से उचित परिणाम आना चाहिए, किन्तु प्राण अशुद्ध होने से वह पैदा नहीं होता है । हमारे में अहम् आदि कम नहीं होते हैं, क्योंकि प्राण की शुद्धि प्रगट नहीं हुई है । उसका लक्ष्य भी प्रगट नहीं हुआ है । इसलिए उच्चतर भावना से भगवान का स्मरण किया करें और जब वह नामस्मरण गंगामैया के अखंड प्रवाह की तरह करने लगेंगे, तब प्राण के आक्रमणों का शमन हो सकेगा । जब आप अजपाजाप की स्थिति पर पहुँचेंगे, तब रागद्वेष फीके पड़ेंगे और कामना, लोलुपता, आशा, तृष्णा, लोभ, क्रोध-मोह आदि नकारात्मक गुण भी कम होने लगेंगे ।

जीवन का ध्येय निश्चित करें

भगवान का स्मरण यह प्रयोगसिद्ध सत्य है । इसे बुद्धि से समझ सकते हैं । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् आदि अंदर के करण उसे स्वीकार ने योग्य प्रकार के हुए नहीं है । फिर भी चेतन का अनुभव करना जीवन का ध्येय तय किया हो तो लगातार

प्रयत्न करते रहना चाहिए। मान लो कि ऐसा ध्येय किसीने निश्चित न किया हो और ऐसा कहे कि हम तो संसारी जीव हैं, वैसे जीवों को भी मेरी सिफारिश है कि यह करके तो देखे ।

संसार में सुखशांति

संसारव्यवहार में जो सुख-शांति की अपेक्षा रखते हैं, अहम्-आदि के आक्रमण को टालना चाहते हैं, उनके लिए भी भगवान का नामस्मरण वह योग्य साधन है । यह अद्‌भुत साधन है । इस साधन को लेकर अजपाजप (effortless effort) तक ले जाओ। जिस तरह रक्त नसों में बहता है, उसी तरह उस साधन को भी संग्राम कर करके भी बहता करो तो सत्त्वगुण की परिस्थिति प्राप्त कर सकोगे । फिर जो कर्म-वर्तन योग्य प्रकार का होगा वही करेंगे और वह सतमय हो जायगा ।

कठिनाई में दैवी सहारा

आज संसारव्यवहार में दूसरी कोई मनोवृत्ति इधर-उधर भटकेगी तो उसे रोकने-टालने के लिए इसके सिवा और कोई साधन नहीं है । फिर वह जिस मार्ग पर हमें ले जायेगा उस मार्ग पर हम चल देंगे । यदि भगवान के स्मरण का-नामस्मरण की शरण में होंगे तो उन मनोवृत्तिओं की शक्ति को कमजोर होते अवश्य अनुभव करेंगे। परोपकार, पुण्य के कार्य या सेवा के काम भले न हो सकें, तो भी १०-१२-१४ घंटे भगवान का स्मरण करेंगे तो प्रसन्नता और शांति का अनुभव अवश्य होगा । इतना ही नहीं लेकिन संघर्ष, कठिनाई, विपत्ति के समय दैवी सहारा अवश्य मिलेगा । मैंने दस घंटे नाम लिया था, वहाँ तक उसका फायदा नहीं मिला, परंतु

जब बारह, चौदह घंटे नामस्मरण किया तब वैसा अनुभव हुआ था ।

संसार के आक्रमण से बचाव

मैं तो साधन की दृढ़ मनोवृत्ति वाला था, फिर भी प्रकृत्ति का ज़बरदस्त ज्वालामुखी के समान आक्रमण हुआ था, लेकिन भगवान के स्मरण ने सहायता की । परंतु वह १५ घंटे तक होने के बाद । हम चेतन का अनुभव करें ऐसा अभी के तबके में निश्चयात्मक रूप से तय नहीं कर सकते हैं । फिर भी संसार के आक्रमणों से बचने के लिए भी भगवान का स्मरण यह अच्छा उपाय है । यह अनुभव से प्राप्त हकीकत है । स्मरण जीभ से बोला जाता है, परंतु उसका प्रकाश अंतर में उतरता है । शब्द को भूल सकते हैं, परंतु स्मरण वह बोलते हुए भी सुन सकते हैं । **भगवान का स्मरण वह ऐसा शब्द है कि जैसे-जैसे बोलते जाते हैं वैसे-वैसे वह अंतर में उतरता जाता है ।** जितनी उच्च प्रकार की भावना से वह बोला जाएगा, उतनी उच्च प्रकार की भावना से अंतर में उतरता है । जब हम कोई भी शब्द क्रोध से बोलते हैं, तब हमारे प्राण में थर्राहट पैदा करता है । जब कि भगवान का नाम तो भावनात्मक है, वह वैसे ही भावनात्मक आंदोलनों को जागृत करता है ।

सातत्य का परिणाम

भगवान का नामस्मरण लगातार होने से सतत भावनात्मक स्थिति में रह सकते हैं । उसमें भी कई अवधि एकाग्रता और भावना की होती है । उसके जो संस्कार करणों में पड़ते हैं, वे बहुत गहरे होते हैं । दिन में ऐसे भाव की—भावना की अवधि जैसे-जैसे बढ़ती जाय वैसे-वैसे उसकी गाढ़ता होती जाएगी ।

हरिस्मरण के लिए ममता

हममें भगवान का नाम लेने की परंपरागत आदत तो है, लेकिन उसके प्रति ममता प्रगट नहीं हुई है। भगवान का नाम लेने की इतनी गरज़ प्रगट नहीं हुई है। हमारी भावना को कोमल रखने के लिए कोई भी साधन लें, लेकिन वह सरल, सहज, निर्दोष और निर्मल होना चाहिए। इससे ध्यानयोग, तंत्रमार्ग, कर्मवाद आदि से जो परिणाम प्रगट होता है, उसके जैसा ही – उतना ही परिणाम प्रगट होगा।

अनुभवी की करुणा

कोई कहेगा, ''**मोटा,** आप भी क्या गप्पें मारते हो ?'' मैं तो अनुभव से कहता हूँ कि भगवान का नाम लोगे तो बुद्धि सूक्ष्म होगी। आपको जीवन में घबराहट नहीं होगी। गुत्थी, कठिनाई आये तब बेचैनी नहीं होगी। आप रास्ता ढूंढ़ लेंगे। कोई कठिनाई आप पर व्याप्त नहीं हो पाएगी। लोगों के स्वभाव के साथ किस तरह निपटना उसकी भी समझ आप में प्रगट होगी। संघर्षण, त्रास, वेदना, दुःख आदि उपजे उसे दूर करने के लिए भी भगवान का स्मरण एक सब से अच्छा उपाय है। बुद्धि स्वीकार कर सके ऐसी यह हकीकत नहीं है, लेकिन भगवान का स्मरण लगातार करते रहेंगे, दिन के सभी कर्म करते हुए उसका स्मरण करते रहेंगे तो उसके सच्चे लाभ का अनुभव हो सकेगा। इसके बिना ऐसा होना संभव नहीं है। अनुभविओं ने यह साधन खोज निकाला है। उन्होंने अनुभव किया कि यह किसी भी तरह की तकलीफ के बिना कहीं भी और कभी भी शांत रीति से मनुष्य ले सके ऐसा यह साधन है। उन्होंने जब मनुष्यों को तकलीफ में दबे देखा, तब उनके प्रति

करुणा करके उनको उपाधिमुक्त करने के लिए यह साधन समझ में आया । वह साधन आप यहाँ कर सकते हो ।

नामस्मरण से गुण वृद्धि

मैं ऐसे क्षेत्र में था जहाँ किशोरलाल मशरूवाला आदि गुण की शिक्षा के ऊपर अधिक महत्त्व देते थे । मुझे गुण का महत्त्व समझ में आया था । क्योंकि उसके सिवा भक्ति का महत्त्व प्रगट नहीं हो सकता । भगवान का नामस्मरण करते-करते जो शक्ति प्रगट हुई, उससे गुणवृद्धि होती गई, जिसका मैंने स्वयं अनुभव किया । सब प्रकार के मनुष्य गुण विकसित नहीं कर सकते । जबकि कोई भी पापी, दुर्जन भी नामस्मरण द्वारा गुणों की वृद्धि कर सकेगा । हमने दस-बारह-चौदह घंटे तक स्वार्थ के कार्य करने की शक्ति को विकसित किया है, परंतु जो आवश्यक है, उसके लिए कुछ किया नहीं है । भगवान के नामस्मरण की गरज़ प्रगट नहीं हुई है, इसलिए ऐसा होता है । यह इच्छा अगर प्रगट हो तो गुणों की वृद्धि अवश्य हो सकेगी । अजपाजप विकसित कर सकें तो उससे गुणों का विकास हो और चेतन की स्थिति अवश्य प्रगट होगी ।

दिनांक ५-१०-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

४. काया की करामात और मन की मरम्मत प्राणायाम की रीति

गंगा और यमुना ये दो तत्त्व हैं । यह दोनों मिलें उस तरह पुरुष और स्त्रीत्व मिलें तो छिपा हुआ चेतन प्रगट होता है । इस तरह त्रिवेणीसंगम होता है । हृदय की धड़कन और श्वासोच्छ्वास की तरह चेतना का प्रवाह बहे तो साधन अच्छी तरह से सुंदर रीति से कर सकते हैं । चेतन के कारण फेफड़ों की धौंकनी चला करती है, परंतु हम रागद्वेष से धकेले जाते हैं, पसंद-नापसंद से धकेले जाते हैं, इसलिए फेफड़े योग्य रीति से कार्य नहीं कर सकते हैं । इसलिए हमारे योगिओं ने प्राणायाम की पद्धति बताई, परंतु उसमें भी शर्त थी ।

पुराने समय में आयुर्वेद भी निर्लोभी और सेवाभावी को सिखाते थे । आज तो जो होशियार हैं, वह एम.बी.बी.एस. हो सकता है । जबकि पहले आर्युर्वेद निर्लोभी को ही सिखाते थे कि वह जनसमाज की उत्तम रीति से सेवा कर सके, तभी जनकल्याण का कार्य हो । इस तरह प्राणायाम सीखने की शर्त यह थी कि जिसकी चित्तशुद्धि हो गई हो, जिसके रागद्वेष, लोभ, मोह, क्रोध आदि कम हुए हों, वही प्राणायाम कर सकता । यह एक शर्त हुई । दूसरी शर्त थी हृदय की । हृदय में ६५-७०-७५ धड़कन हों । रक्त के प्रवाह का वोल्यूम जिस प्रकार होना चाहिए उस प्रकार का नहीं होता है, परंतु जो रक्त प्रत्येक मनुष्य की रग में वहन करता है,

उसकी गति में फर्क होता है । उसका आधार हृदय की गति पर रहता है । हृदय के लिए एक ही उपाय है । अनुभव से ऐसी खोज की कि जब भावना प्रगट हो, उसका सातत्य प्रगट हो तो हृदय सही स्थिति में कार्य कर सकता है । आज प्राणायाम मनुष्य से हो सके ऐसी स्थिति नहीं है और यदि आज वह करेगा तो अपने फेफड़ों को खराब करेगा । जब अहम् नम्रता में बदल जाय तभी वह प्राणायाम सीखने की योग्यतावाला कहा जायगा ।

भावना का महत्त्व

हृदय को योग्य स्थिति में बनाये रखने के लिए भावना प्रगट होनी चाहिए और उसे प्रगट करने के लिए अलग-अलग साधन खोज निकाले गये । भजन, प्रार्थना, सद्वाचन, सत्संग आदि कि जिससे मन ऊर्ध्व स्थिति प्राप्त कर सके । जब मन टक्कर, संघर्ष, उलझन, दुःख, शोक में आ पड़े तब मनुष्य को ऐसी ही स्थिति में पड़ा नहीं रहना चाहिए, उसे मोड़ना चाहिए । ऐसी स्थिति के समय मन में हलकापन हो वैसा उपाय लें ।

भावना का लगातार फुवारा प्रगट हो उसके लिए वैसे विचार में रहना । संसार के व्यवहार और कर्म प्रति विचारों के बदले उससे अलग विचार करने के लिए भजन, प्रार्थना इत्यादि उपाय करेंगे तो भावना प्रगट होगी । उसके संस्कार ज्ञानतंतु ऊपर, आधार ऊपर पड़ते हैं । हमें दुःख, हर्ष इत्यादि होते हैं, उसकी समझ ज्ञानतंतु के कारण होती है । हमारे ज्ञानतंतु जितने मज़बूत होंगे उतनी मात्रा में दुःख आदि के हमले का असर मन पर कम होगा । इसलिए दुःख से बचने के लिए हमारे ज्ञानतंतुओं मज़बूत होने चाहिए ।

संसार में स्थिति

संसार में अनेक जीवों के साथ संपर्क में आना होता है । उसमें

से संघर्षण, पसंद—नापसंद, अवहेलना आदि के आघात-प्रत्याघात ज्ञानतंतु पर होते हैं । इससे ज्ञानतंतु कमजोर होते हैं और उसकी मरम्मत भी होनी चाहिए, परंतु ऐसा होता नहीं है ।

ज्ञानतंतु को मजबूत करने हेतु

भगवान ने मनुष्य के शरीर को लगने वाली थकान को दूर करने के लिए नींद दी हैं । नींद की भेंट दी है, लेकिन हमारे ज्ञानतंतु उस तरह सोते नहीं है । वे तो नींद में भी कार्य करते रहते हैं । उस पर रागद्वेष, टक्कर, और अनेक प्रकार के हमले की जो मार पड़ती है, उसके विचारों से और घर्षण से ज्ञानतंतु की कमजोरी बढ़ती है । शरीर की थकान दूर करने के लिए नींद दी है, लेकिन ज्ञानतंतु को मजबूत करने के लिए कुदरत ने कोई साधन नहीं दिया है । इसलिए अनुभविओंने अपने अनुभव से भगवान के नामस्मरण का साधन दिया है ।

यदि मनुष्य तटस्थ बने, समता बनाये तो ज्ञानतंतु को मजबुताई मिले, परंतु तटस्थता और समता बनाने के लिए आध्यात्मिक प्रकार का जीवन अधिक आवश्यक है । ज्ञानतंतु को Tone up करने के लिए, उसे मजबूत करने की जरूरत है । पाश्चात्य देशों में भी जो शब्द स्वयं को पसंद हो और जिस पर स्वयं को विश्वास हो, वह शब्द ज्ञानतंतु की मरम्मत करने का साधन है, ऐसा आज प्रयोग से सिद्ध हुआ है । संगीत से मनुष्य में सुसंवादिता और समता प्रगट होती है । मन में जब उलझन हो, तब भी संगीत से शांति का अनुभव होता है । शब्द के उच्चारण का असर ज्ञानतंतु को बलवान बनाता है । ज्ञानतंतु की मरम्मत के लिए यह एक सिद्ध हुई हकीकत है ।

ज्ञानतंतु की मरम्मत

फेफड़े, हृदय, ज्ञानतंतु इन सब को मरम्मत की आवश्यकता रहती है । फेफड़ों की मरम्मत आज के समय में हम नहीं कर सकते हैं । प्राणायाम द्वारा वह हो सकती है । लेकिन मुझसे कोई पूछे तो मैं कहूँगा कि मुझे उस बारे में ज्ञान नहीं है । सभी देहधारी मनुष्य के हृदय और ज्ञानतंतु की मरम्मत हो सकती है । हृदय को योग्य स्थिति में रखने के लिए भावना का फव्वारा लगातार उसमें उड़ता रहना चाहिए । ज्ञानतंतु की मरम्मत के लिए निर्दोष और सरल उपाय भगवान का नामस्मरण, प्रार्थना, भजन और उसके चरणकमल में समर्पण । चित्त में जो भी विचार-वृत्तियाँ आयें उन सब को उसके चरणों में समर्पित कर देना चाहिए। जिस प्रकार हम हमारे मित्र को हमारी अत्यंत गुप्त बात कह देते हैं, परंतु उससे हमारा दुःख, हलका हो ऐसा नहीं होता, परंतु भावना वैसा कराती है । इस तरह प्रत्येक घंटे-मिनटों के अनेक संघर्षण आदि जो सब हो, उसे हमारे प्यारे सगे को समर्पण-निवेदन करते रहेंगे, तो ज्ञानतंतु अवश्य Tone up होते हैं, बल मिलता है । वे इतने शक्तिशाली हो जाते हैं कि हम कठिनाई और संघर्षण से अलिप्त रह सकते हैं; किसी से व्याप्त नहीं हो जाते । समस्या का हल भी हम उत्तम प्रकार से कर सकते हैं ।

संसार में चैन

संसार में अनेक बार ऐसी झंझट उत्पन्न होती रहती हैं, लेकिन जिसके ज्ञानतंतु मजबूत हैं, वह बहुत शीघ्र सरलता से समस्या का हल ढूंढ़ सकता है। जीवन में संसार का व्यवहार श्रेष्ठ रीति से करने के लिए, गुत्थिओं से व्याप्त नहीं होने के लिए यह एक उत्तम उपाय है ।

संसार में धन ज़रूरी है । स्त्री-पुत्र प्यारे हैं । अरे ! आज तो स्त्रीपुत्र से भी धन की आवश्यकता अधिक है ऐसी भावनावाले व्यक्ति भी हैं। लेकिन मन आदि करणों को संतुलित रखने के लिए और सभी प्रकार के कर्मों को उत्तम प्रकार से करने के लिए सद्‌वाचन, सत्संग और उसकी भावना वह भी उत्तम से उत्तम साधन हैं । मैंने तो आपके सामने यह बात रखी है । मैं तो एक ही विषय पर अलग-अलग तरीके से चर्चा करता हूँ ।

प्रकृति का रूपांतर किस प्रकार से हो ?

हम कर्म करते हैं, परंतु कोरे पंडित की तरह करते हैं । कर्म करते हैं, उसमें भावना नहीं होती । अनुभविओं ने कहा, कि 'कर्म प्रभुप्रीत्यर्थ करो ।' काम, क्रोध, लोभ, मोह कमजोर हो जायेंगे । भगवान के साथ खेलो, झगड़ो, हँसो । इससे उसका रूपांतर-sublimation-ऊर्ध्वगमन होगा ।

भगवान का नाम लेते, प्रार्थना करते, आत्मनिवेदन कर-करके समर्पण करते उसके साथ संबंध जुड़ जाय तो ज्ञानतंतु और हृदय योग्य स्थिति में प्रगट होगें । इतना ही नहीं फेफड़े भी असल स्थिति में आयेंगे । प्राणायाम से यह अच्छा और सरल मार्ग है । हृदय और ज्ञानतंतु के साथे फेफड़े जुड़े हुए हैं । पहले वे दो मज़बूत हो, इससे फेफड़े भी मजबूत होंगे । दो त्रिकोण के दो-दो कोण समान होंगे तो तीसरा कोण भी समान होगा, परंतु वह तुरंत नहीं हो सकेगा, यह भी ज्ञान होना चाहिए ।

ध्यान का परिणाम

संपूर्ण एकाग्रता से ध्यान होता है, तब नाड़ी की धड़कनें शून्य तक पहुँचती है । यह तो सिद्ध करके दिखाया है । डॉक्टर भी नहीं

मानते । यह तो एक मित्र को दिखाया है । पहले धड़कन तीस तक पहुँच जाती है, फिर असली स्थिति में आ जाती है । उस समय रक्त चेतनमय हो जाता है । जिस रक्त में जीवन नहीं हो वैसा हो जाता है । जब ध्यान संपूर्ण एकाग्रता, केन्द्रितता के साथ किया जाता है, तब रक्त संपूर्ण चेतनमय बनता है । रक्त चलता नहीं होता फिर भी चलता है और अनेक जन्मों की थकान मिट जाती है । दिनभर के कर्मों में ऐसी एकाग्रता प्रगट हो तो ही ऐसा ध्यान हो सकता है ।

मलशुद्धि

अपने प्रतिदिन के व्यवहार में भावना का एक लगातार प्रपात बहता रहे, उसके लिए यह संभव है और उसके अनेक जन्मों की थकान मिट जाती है । मेरे-तुम्हारे जैसे व्यक्तिओं के लिए यह संभव नहीं है । ऐसे ध्यान से तो रक्त की बहुत ही विशुद्धि हो जाती है । आँतों में जो मल पड़ा हुआ हो, वह भी निकल जाता है । एक साधु महाराज ने कहा था कि जैसे तुम्हारे संस्कार । मल के कारण नकारात्मक मनोवृत्ति उत्पन्न होती है । **दस्त साफ आना अत्यंत आवश्यक है । उसका व्यक्ति को ज्ञानभान नहीं है । दस्त साफ नहीं होगा तो अहम्-प्राण भी साफ नहीं होंगे । मल साफ कैसे आये यह सीखना जाहिए ।** एक मित्र को कहा कि मृत्यु के समय मल रह न जाय, क्योंकि जन्म लेते समय मल बनता है और मृत्यु के समय मल रहता है । इसलिए मलशुद्धि की अत्यंत आवश्यकता है ।

आत्मनिवेदन का हेतु

अब असल बात पर आता हूँ । **फेफड़े, हृदय और ज्ञानतंतु की सफाई, मजबूताई और मरम्मत के लिए आत्मनिवेदन,**

समर्पण इत्यादि करते रहना चाहिए । भगवान को सब कहा करें। कोई पूछे कि कहते रहने से क्या होगा ? देख नहीं सकते है, अनुभव हो नहीं सकता ! लेकिन वह तत्त्व कर्म में हमें प्रेरित कर रहा है न ? उसके साथ हृदय का संबंध होता है। यह कहने से नहीं समझा जा सकता है, अनुभव से ही समझा जा सकता है । भगवान का नाम लेने से यह संबंध प्रगट होता है । हमारे में पुरुषतत्त्व तो है ही, परंतु सुषुप्त दशा में है। लगातार साधना में लगे रहो । **अनेक उपायों से भगवान का सातत्य प्रगट हो, तब पुरुषतत्त्व जागृत होता है । फिर प्रकृति का कुछ नहीं चलता, बाद में प्रकृति गुलाम हो जाती है, फिर किसी भी कर्म का बंधन नहीं रहता है ।**

दिनांक : २७-१०-१९६०

॥ हरि:ॐ ॥

५. हरि:ॐ आश्रम का कार्य

सूक्ष्म चक्रभेदक सर्जन

शरीर में एपेन्डीसाइटिस कहाँ होता है, वह डॉक्टर जानता है। डॉक्टर जब ऑपरेशन करता है, तब उसकी छुरी उसी जगह पर चलती है। खराब हुए भाग को वह काट डालता है। हमारे आधार में भी ऐसे स्थान हैं, जहाँ विचारों के, मनोभावों के संस्कार पड़ते हैं और स्थायी हो जाते हैं। हमारी भाषा में यह नहीं समझा सकें ऐसा है। उसके लिए तो योग्य विद्या चाहिए। जो करना चाहे उससे ही हो सकता है। और उस प्रकार वह अपना स्वयं का कल्याण भी कर सकता है। शरीर में ६ चक्र हैं, लेकिन वे सूक्ष्म हैं। डॉक्टर या वैज्ञानिक उसे पहचान नहीं सके हैं। वे इतने सूक्ष्म हैं कि चीर-फाड़ करने से भी हाथ में नहीं आते। ज्ञानतंतु वे बाल से भी कई गुना सूक्ष्म हैं, पानी में दिखाई नहीं देते हैं। परंतु सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखे जा सकते हैं। यह तो ज्ञानतंतु के बारे में बात हुई। वे इतने सूक्ष्म हैं। तो ये जो ६ चक्र हैं-जो रीढ़ की हड्डी में हैं और इन ज्ञानतंतुओं का वे आधार हैं। जब भगवान के अखंड नामस्मरण के परिणाम स्वरूप ज्ञानतंतुओं में गति होती है, तब इन ६ चक्रों में भी गति होने लगती है। जिसके जीवन में भगवान की भावना का सातत्य प्रगट हुआ है, उससे ये ६ चक्र जीवित हो जाते हैं। जब ये ६ चक्र गतिमान होते हैं, तब शरीर की शक्ति अलग प्रकार की होती है। मंत्रयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग-किसी भी मार्ग के द्वारा उसकी भावना में सातत्य होना चाहिए, तभी ये ६ चक्र गतिमान होते हैं।

हमारी गति का आधार

किसी को अमुक चक्र पहले तो किसीको दूसरा चक्र पहले गतिमान होता है, वह तो उसकी स्थिति पर आधारित है । शरीर तीन प्रकार के हैं-स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर । चित्त पर पाप-पुण्य के संस्कार पड़ते हैं और उसके अनुसार गति होती है। यदि सिर्फ मृत्यु के समय ही भगवान की भावना में स्थिति रहे, तो उसका असर दूसरे जीवन में रहता है। इस विषय में बहुत संशोधन हुआ है और mystic गूढ़शक्ति-गुह्य शक्ति का आविष्कार हुआ है ।

प्रभु को प्रकट करनेवाली विद्या

हमारे में पुरुष और प्रकृति ऐसे दो तत्त्व हैं। पुरुष सुषुप्त दशा में है। उसे जगाना पड़ता है। वह जागे तभी भगवान की भावना में सातत्य प्रगट होता है। फिर वह प्रकृति को चलाता है। जिसमें वह भाग न ले, उसका उसे बंधन नहीं होता है। पुरुषतत्त्व यह तय करता है कि उसे किसमें भाग लेना है और किसमें नहीं लेना है। इसमें प्रकृति का कुछ नहीं चलता। जो गुह्य और गूढ़ विधि के संस्कार डाल दिये हैं, वे जागृत होते हैं। दूसरे जन्म में यह बहुत आगे बढ़ता है। इस जन्म में उसने कुछ किया हो या नहीं तो भी पिछले जन्म के पुण्य भोगता है। अनुभविओं ने देखा है कि दूसरा जन्म लेने पर आगे कैसे जा सकते हैं ? इसके लिए गूढ़विद्या का आविष्कार किया। यह विद्या ऐसी है कि सिखाने से नहीं सीखी जा सकती। अत्यंत सूक्ष्म होने से बताई नहीं जा सकती। गुह्यविद्या के जानकार आज भी हैं, लेकिन आप या मैं उसे समझ नहीं सकते। हमारी समझने की भूमिका नहीं है।

सच्ची बात

ऐसे लोग जागृत होते हैं, तब राजा बन जाते हैं । वे सभी पुरुषतत्त्व के वश में हैं । उसे भगवान के स्मरण में ही ओतप्रोत रहना पसंद है । उसे जन्म से ही ऐसी सरलता प्राप्त होती है, जो सामान्यतः प्रगट होने का संभव नहीं है । ऐसे लोग समय को संक्षिप्त कर देते हैं । भगवान की भावना को सूक्ष्म में प्रगट करने वाली दूसरी कोई शक्ति नहीं है । इसलिए हमारे सूक्ष्म में यदि ऐसी भावना उतरे तो दूसरे जन्म में हमें सहायता मिले । इसके लिए निर्दोष, निर्मल साधन भगवान का स्मरण है । इससे भावना सजीव होती है । जब तमन्ना हो, तभी जागृत रहती है, परंतु जब तक वैसा न हो, तब तक प्रयत्न करना पड़ता है । धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाकर अजपाजप (२४ घंटे) की स्थिति में पहुँचना चाहिए । जब ऐसा होगा, तब हृदय की-अंतर की भावना प्रगट होने लगती है । यह सच्ची साधना है । और इस प्रकार आत्मा के प्रकाश का अनुभव करने की सच्ची साधना होती है । हल्दी या सोंठ के डले से पंसारी होनेवाले मेरे जैसे अनेक पड़े हैं । किंतु जिसे दिल में जागृति है, उसके लिए यह सरल है । तमन्ना जागृत होती है, उसके लिए यह सरल है । सूरदास चाहे खराब मार्ग पर जा रहा था, परंतु तमन्ना के कारण बाढ़ के ऊपर तैर कर गया । हमारे में वह तमन्ना नहीं है, फिर भी हम महसूस करते हैं कि ऐसे साधन करें तो अच्छा हो । ऐसे भावना में प्रगट होते-होते सहज हो जाय तो सातत्यता प्रगट होगी । जब यह स्थिति उत्पन्न होगी, तब हम उसका अनुभव कर सकेंगे ।

प्रयोगसिद्ध विज्ञान

भावना में जागृत हो जाँय तो दूसरे जन्म में इसी मार्ग पर शीघ्र जा सकेंगे । ऐसा हो तो शरीर का दूसरा जन्म शीघ्र होता है, नहीं तो जीव को जन्म लेने में बहुत समय लगता है, यह अनुभव से कहता हूँ । **पुराणों की बातों को सत्य मानना नहीं ।** सात्त्विक पुरुष का जन्म जल्दी हो जाता है । ज्ञानचेतन की दशा में निष्ठा पाने वाले कोई हमारे पर कृपा करे और सूक्ष्म में संस्कार डाले तो, या भगवान के स्मरण में सातत्य प्रगट हो और भावना जागे और उसके कारण सूक्ष्म में सूक्ष्म संस्कार पड़े तो जन्म जल्दी होता है । इसका भी गणित है । श्रीमद् राजचंद्र ने लिखा है, 'अच्छी रीति से साधन करे उसे २१ जन्म, उत्कटता वालों के लिए ७ जन्म और उससे भी प्रबल हो तो ३ जन्म ।' मुझे मेरे मित्रने उनके पत्र में यह बताया था । श्रीमद् राजचंद्र तो महान योगी थे । यह भी विज्ञान की तरह ही प्रयोग से सिद्ध किया जा सकता है । किन्तु वैसा प्रयोग करे तब ना ? जहाँ तक याहोम[१] करके आगे बढ़ने की दिल में इच्छा जागृत नहीं होती है, वहाँ तक कुछ भी प्राप्त नहीं होता है ।

बिना सोचे समझे सलाह देना

मैं तो देखता हूँ कि कई पंडित जिस विषय के विद्वान नहीं होते हैं, उसमें भी अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हैं । आईन्स्टाइन ने रिलेटिविटी (Relativity) के सिद्धांत को खोजा, किन्तु उसके जानकार विश्व में १०-१५ व्यक्ति ही हो सकते हैं । इस में सलाह देने कोई जाता नहीं-जा सकता नहीं । क्या हम डॉक्टर को सलाह देने जा सकते हैं ? जिस विषय में हम कुछ भी जानते नहीं हैं,

१. कुरबानी की तमन्ना

उस विषय में बिना समझे-सूझे बीच में अपनी सलाह नहीं देनी चाहिए; नहीं तो जो अपना खुद का होगा उसे भी खो बैठेंगे। जहाँ तक सूक्ष्म में चेतनात्मक संस्कार का प्रवेश नहीं होता है, वहाँ तक जीव का उद्धार संभव नहीं है। शरीर के सूक्ष्म तत्त्वों-मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम्-इसमें संस्कार का प्रवेश होना चाहिए। ऐसा हुए बिना योगविद्या नहीं कर सकते। हाँ, नाम ले सकते हैं। इसलिए ज्ञानीपुरुषों ने नामस्मरण को भी सब से बड़ा योग कहा है, क्योंकि परिणाम एक समान ही मिलता है।

भावना से ही परिणाम

आजकल लोग लाखों रुपये खर्च करके यज्ञ करते हैं। उनको भी मैं कहता हूँ कि समय परिवर्तित हो गया है। क्यों व्यर्थ में पैसे खर्च कर रहे हो ? कुछ ऐसा करो कि जिससे समाज का कल्याण हो, लेकिन कोई मानता नहीं है। जपयज्ञ में तो पैसे का खर्च नहीं। भगवान के नाम का जपयज्ञ करने से संस्कारों का प्रवेश करा सकते हैं, बोलने का भी असर होता है, परंतु उसमें सातत्य प्रगट होना चाहिए। ऐसा हो तो काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या कम होंगे। ये सब मिटें बाद में सहज प्रयत्न से आगे बढ़ा जा सकता है। बड़ी लकड़ी जल्दी से नहीं उठा सकते हैं, किन्तु नीचे पत्थर रखकर लुढ़काने से तुरंत लुढ़क जाती है। वैसे भावना में सातत्य प्रगटे तो जल्दी निकाल आये।

हरिःॐ आश्रम किस लिए ?

सूक्ष्म में संस्कार का प्रवेश हुए बिना उद्धार नहीं है। किसी महात्मा के द्वारा संस्कार का प्रवेश हो सकता है, परंतु हम **जीव**-दशावाले होने से विश्वास नहीं होता। इसलिए भगवान का नामस्मरण

करने में सातत्य प्रकट कर लें । ऐसा करने से दूसरा जन्म तो अनुकूलता वाला प्राप्त होगा । आप चिंतामुक्त हृदय से भगवान का नामस्मरण ले सको इसके लिए यह हरि:ॐ आश्रम है । यह पद्धति-टेकनिक गुरुमहाराज की कृपा के कारण है और उनकी कृपा से ही चला रहे हैं । कर्म के संस्कार कभी मिथ्या नहीं जाते हैं, नहीं तो यह कैसे हो ? इसलिए इसमें बैठो और प्रेम से प्रयत्न तो करिये तो सर्वोत्तम संस्कार पड़ेंगे । सात दिन बैठने से संग लगेगा, परंतु इक्कीस दिन जैसे दृढ़ नहीं पड़ेंगे ।

दिनांक : १५-११-१९६०

॥ हरि:ॐ ॥

६. शब्द की शक्ति

शब्द द्वारा मनोभाव

संपूर्ण ब्रह्मांड की रचना इस प्रकार की है कि उसे हम साकार रूप में देख सकते हैं, परंतु उसकी रचना बहुत सूक्ष्म है । पृथ्वी पर जितने धर्म हो गये, उनकी मूल संस्कृति के आद्य प्रवर्तक भी हो गये । वे कह गये हैं कि शब्द वह ब्रह्म है । साकार और निराकार ऐसे चेतन के दो स्वरूप हैं । इन दोनों में कोई अंतर नहीं है । दोनों मार्गों के प्रत्यक्ष लक्षण समान हैं और वह शब्द है । शब्द में कोई शक्ति रही है, उसके द्वारा क्रोध, दया और परोपकार के मनोभाव उत्पन्न किये जा सकते हैं । प्रेम का और ऐसे ही अनेक प्रकार के मनोभाव शब्द द्वारा व्यक्त किये जा सकते हैं । शब्द में ऐसी शक्ति है, यह हकीकत निर्विवाद है ।

पाँच तत्त्वों की लीला

आकाश में क्षोभ हुआ (क्यों हुआ यह कोई शास्त्री कहता नहीं) शब्द में गति है । आकाश द्वारा वायु उत्पन्न हुआ । वायु तत्त्व उत्पन्न होने से दो तत्त्व हुए । आकाश और वायु में क्षोभ हुआ तो तेज-अग्नि तत्त्व पैदा हुआ । अग्नि तत्त्व में क्षोभ पैदा हुआ तो जल तत्त्व पैदा हुआ । चार तत्त्व हुए । जलतत्त्व में क्षोभ हुआ इससे पृथ्वी हुई । ऐसे पाँच तत्त्व हुए । मानवशरीर में पाँच तत्त्व हैं, इसलिए संपूर्ण ब्रह्मांड उसमें है । अनेक प्रकार के अलग अलग तत्त्वों के कोई एक के, कोई दो के, कोई तीन के या कोई चार के-इसमें अलग-अलग पर्मीटेशन, कोम्बीनेशन भी हैं । ऐसे अनेक प्रकार के जीव संपूर्ण ब्रह्मांड में हैं । तारों में भी अनेक प्रकार के जीव हैं । सूर्य में तेजतत्त्व विशेष महत्त्व वाला है, इसलिए वह प्रचंड अग्नि समान है । तारे और ग्रहों में भी पाँच तत्त्वों की लीला चल रही है ।

मानवशरीर की रचना

मनुष्यशरीर में भी पाँच तत्त्व मिले हैं। हमारा शरीर गरम रहता है, यह तेज तत्त्व का अर्थात् अग्नि का सबूत है। यह प्रत्यक्ष हकीकत है। ९७ डिग्री फैरेन्हाइट गरमी से पानी भी गरम हो जाता है। शरीर में वायु, जल और पृथ्वी तत्त्व हैं, इतना तो समझ में आता है, परंतु आकाशतत्त्व है, यह समझ में नहीं आता है। लेकिन वह तत्त्व है, यह हकीकत है। हमारे पास वाणी है। शब्द द्वारा सब व्यवहार चलता है। शब्द का अत्यंत महत्त्व है। मनुष्य के शरीर में जो जीवात्मा है, वह भगवान का अंश है, परंतु आज उसके अनुसार नहीं है। क्योंकि वह प्रकृतिरूप बन गया है। किन्तु आत्मा के तत्त्व को अनुभव करने के लिए सब से सरल साधन शब्द है। प्रत्येक पल जीवंत जागृति धारण कर सके उसके लिए सब से सरल साधन शब्द है। जो कि दूसरी विधियाँ भी हैं। तेज, वायु, पृथ्वी, जल-इन चारों तत्त्वों को साधन रूप से ले सकते हैं। परंतु हम वह नहीं कर सकते। हम शब्द की शक्ति को विकसित कर सकते हैं, वह शब्द चेतन प्रत्यक्ष हो जाय ऐसी रीति से कार्यान्वित हो जाय उस रीति से विकसित कर सकते हैं कि शब्द के द्वारा चेतन प्रकट हो जाय। शब्द की ऐसी सकल साधना को प्रत्येक धर्म में स्थान दिया गया है। उसका निरूपण-मूल्यांकन प्रत्येक धर्म में है।

सत्त्वगुण की प्रतिष्ठा कब हो ?

जब तक आकाशतत्त्व की प्रतिष्ठा प्रगट न हो सके-आकाश का गुण प्रकाशमय नहीं हो, तब तक सत्त्वगुण की वृद्धि नहीं हो सकती। अनुभविओं ने उसका अनुभव करके जगत के सामने रखा है। शब्द में आकाशतत्त्व है, इसलिए शब्द में निरंतरता प्रगट हो,

उसमें भावना का सातत्य जागृत हो और वह अखंड रहे तो आकाशतत्त्व विशेष प्रमाण में जागृत होगा तभी सत्त्वगुण की प्रतिष्ठा होगी । काम को लय करने के लिए साधना करना बहुत कठिन है। वह हमारी शक्ति के बाहर की बात है । जबकि यह शब्द की साधना तो लूले, लंगड़े, अपंग, वृद्ध सब कोई कर सकते हैं । ऐसे शब्द की साधना वह भगवान का नाम । कराची में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने प्रश्न पूछा था, 'प्रिय व्यक्ति का नाम ले सकते हैं ?' उसका उत्तर दिया था, 'पत्नी प्रिय हो और उसके नाम का स्मरण करोगे तो उसकी भावना प्रकाशित होगी । तुम चेतन का अनुभव नहीं कर सकोगे । शब्द द्वंद्वातीत, गुणातीत प्रदेश का होना चाहिए । ऐसा प्रदेश का शब्द सिर्फ भगवान का नामस्मरण ही है।' हमारी भारतीय संस्कृति का रक्त हमारे में बहा है-यह भावना शब्द के उच्चारण से जागृत होती है ।

प्रथम तो मौखिक जप

मानसिक जप सर्वोत्तम है, परंतु वह कोई नहीं कर सकता । वर्तमान में हमारा मन प्राकृतिक संकल्प-विकल्प करने के धर्म में व्यस्त है। लगन लगे बिना उसका मनन-चिंतन नहीं हो सकता । ज्ञानभक्ति का लगातार अभ्यास के बिना मन में जप नहीं टिक सकता। इसलिए मुख से जप का अभ्यास करते रहेने की आवश्यकता है । 'भगवान', 'हरिः ॐ', 'राम', 'कृष्ण' इत्यादि उच्चार मुख से हो ऐसा बोलें ।

शक्ति कैसे प्रगट हो ?

हमारे छोटे दिमाग के नीचे ज्ञानतंतु की एक गांठ है । वहाँ से शब्द का स्फोट होता है । शब्दों के गतिरूप-वायुरूप आंदोलन होते हैं, ऐसे होकर वे कान में प्रवेश करते हैं, जैसे रेडियो में शब्द

ग्रहण होते हैं, उसी तरह शब्द को कान ग्रहण करते हैं । उसमें जो ज्ञानतंतु होते हैं, वे आंदोलनों को पकड़ लेते हैं और पल भर उस केन्द्र पर स्फोट होता है । इस तरह शब्द के आंदोलन ज्ञानतंतुओं को स्पर्श करते हैं, और सभी ज्ञानतंतुओं Tone up (टॉन अप) होते हैं यानी कि शक्ति का संवर्धन होता है, वे तेजस्वी बनते हैं। यह अनुभव का विषय होने से प्रयोग करके देखने से ही पता लग सकता है। जब शब्द का सातत्य प्रगट होता है, तब जबरदस्त शक्ति प्रगट होती है । अनुभविओं ने देखा है कि शब्द से चेतन का अनुभव हो सकता है ।

सरल साधन का महान परिणाम

जप की विशेषता यह है कि गूढ़ विषय में नहीं जाना पड़ता, दूसरे कोई साधन खोजने नहीं पड़ते । काम करते-करते भी आप वह कर सकते हो । तीन घंटे का आसन करो तो मन की शुद्धि हो । मेरे गुरुमहाराज ने कहा था कि यह सब सीड़ियाँ भी हैं, परंतु सिर्फ यह नाम लेंगे तो उसका परिणाम योगमंत्र के समान ही होता है । योगविद्या के लिए यम-नियम होते हैं, इसलिए हम कर नहीं सकते । इसके लिए चित्त की शुद्धि की शिक्षा हमें मिली हो । ऐसे व्यक्ति तो बहुत ही कम होते हैं । सरल और सहज रीति से हो सके वैसा साधन सिर्फ यह नामस्मरण ही है ।

शक्ति का दुर्व्यय फिर भी अजागृत

हमारे आधार में जो शक्ति रही है, उससे हम कर्म करते हैं। इससे शक्ति का व्यय हो रहा है । इतना ही नहीं, परंतु दुर्व्यय हो रहा है । जो यह समझेगा तुरंत जागृत हो जायगा । पाँच पैसे भी गलत खर्च हो जाने पर तकलीफ होती है । व्यापारी हाथ पर की रोकड़ मिलाने बैठे और पाँच रुपया का भी फर्क आ जाय तो उसे

चैन नहीं पड़ती। वह कैसे भी करके हिसाब मिलाने का प्रयत्न करेगा। धन जैसी शक्ति का दुर्व्यय भी मनुष्य सहन नहीं कर सकता, जबकि यह तो शक्ति का दुर्व्यय हो रहा है, परंतु किसी को उसका होश नहीं है, इससे तू जागृत नहीं है। ईश्वर का स्मरण होगा-होता रहेगा तो भौचक्का जागेगा।

त्यागना क्या ?

कोई सोचे कि यह करेंगे तो संसार का व्यवहार कैसे चलेगा और हम कार्य कैसे कर पाएँगे ? परंतु यह सब छोड़ने की इसमें बात नहीं है। परिस्थिति अनुसार प्राप्त हुआ धर्म अनासक्तिपूर्वक पूर्ण करना है। यदि कुछ त्यागना है तो वह आसक्ति, काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि हैं। अंत:करण में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद रहते हैं। मोह न हो, काम न हो ऐसा हो नहीं सकता। इसी प्रकार का ही वह प्रकृत्ति का तत्त्व हैं। उनकी शुद्धि हुए बिना कुछ नहीं हो सकेगा। पहले, वैद्य इलाज करने से पहले दर्दी की मलशुद्धि करवाते थे। इसलिए सब में शुद्धि अनिवार्य है। काम, क्रोध, लोभ, मोह अपने आप अदृश्य हो जाँय ऐसा हो नहीं सकता। तब तक अनासक्त रीति से बरतना भी नहीं हो पायेगा। हजारों में शायद ही कोई एक ऐसा कर सके। इसलिए मनुष्य का उद्धार तो सिर्फ भगवान के नाम से ही हो सकता है।

सत्त्वगुण की प्रतिष्ठा

जब शब्द का लगातार उच्चारण होता रहेगा, तब आकाशतत्त्व विकसित होगा, अर्थात् सत्त्वतत्त्व भी विकसित होगा। जिस तरह H_2O हाईड्रोजन और ऑक्सिजन इकट्ठे होते ही जल बन जाता है, यह जैसी शुद्ध हकीकत है, उसी तरह शब्द आधार में काम करे तो आकाशतत्त्व प्रकट होगा तो ही सत्त्वगुण प्रतिष्ठित होगा, तो ही रजस और तमस अपने आप शांत हो जायेंगे।

त्रिगुणात्मक माया

फिर हमें ऐसा होता है कि राग, द्वेष, मोह जैसे अनर्थकारी मनोवृत्तियों किस लिए हैं ? यह सब प्रकृतितत्त्व के कारण से हैं और प्रकृतितत्त्व अनादि है । इसलिए वे क्यों हैं यह अलग ही प्रश्न है, लेकिन इस त्रिगुणात्मक माया में सत्त्वगुण की प्रतिष्ठा प्रगट हो अर्थात् लोभ, क्रोध इत्यादि का नाश हो और तभी पुरुषतत्त्व जागृत होगा ।

१. सत्त्व – आकाश
२. रजस – तेज (अग्नि), वायु
३. तमस – जल, पृथ्वी

यह त्रिगुणात्मक माया का रूप है ।

पुरुषतत्त्व जागृत कब हो ?

एक-सी कक्षा में गति यह रजस का गुण है । सत्त्वगुण में चेतनात्मक स्थिरता होती है और तमस में जड़ जैसी स्थिरता होती है । दोनों में वही फर्क है । हमारे शरीर में तीन गुण हैं । उसमें सत्त्वगुण की प्रतिष्ठा हो तो पुरुषतत्त्व जागृत हो । उसे जागृत करने का साधन मात्र शब्द है, जिसे हम किसी भी समय चलते फिरते कोई भी कार्य करते हुए भी कर सकते हैं । यह साधन उपयोगी हो सके ऐसा है ।

अनुभव से ही समझा जा सकता है

हम हमारे कर्म किस तरह से करें यह भी अनुभव का विषय है । गीता में कहा है ''मैं तो बुद्धियोग देता हूँ ।'' **बुद्धि सात्त्विक बने उसे प्रज्ञा कहते हैं ।** उसे विचारों की परंपरा नहीं जागेगी, हल अपने आप हो जायेगा । अभी एक के बाद दूसरे विचारों की परंपरा चलती रहती है, परंतु यदि भावना से भगवान का नामस्मरण

करने लगे तो इस प्रकार की सात्त्विकता, तेजस्विता प्रगट हो । यह बात सिर्फ अनुभव से समझी जा सकती है । कर्म को सर्वोत्तम रीति से करने के लिए बुद्धि को योग्यता वाली बनानी पड़ेगी। लेकिन उसके लिए लगातार नामस्मरण आवश्यक है । ऐसे तो बुद्धि कबूल करे ऐसा है, परंतु किसीने किया है सही ? श्रीमद् राजचंद्रजी को प्रारब्धयोग से पता लगा कि लाख रूपये का ऋण है । व्यापार में पड़े । फिर भी भाव से व्यापार करते थे । कमीशन एजन्ट का काम करते । व्यापारी को नफा अधिक हो उस प्रकार से माल भेज़ते । हीरे-जवाहिरात का व्यापार करते थे । उन्होंने इस तरह बुद्धि का उपयोग किया । जिस क्षेत्र में हम हैं, उस क्षेत्र के कर्मों को उत्तम प्रकार से करने के लिए योग्यतापूर्ण बुद्धि विकसित करने के लिए शब्द ही एकमात्र साधन है । यह सर्वोत्तम हकीकत है । ये गप्पें नहीं लगाता । यह करके देखने से साबित हो सकता है। इससे ताजगी प्राप्त होती है । ऐसी ताजगी दवा से भी प्राप्त नहीं हो सकती ।

रोग क्यों होते हैं ?

हमें जो बीमारी होती है, वह जीवदशा की वृत्ति के कारण होती है । हम शक्ति को व्यर्थ में खर्च कर देते हैं । लोलुपता और बेचैनी के कारण बीमार होते हैं । हम सभी को मर्यादा रखनी चाहिए । मनुष्य ही ऐसा निकला है कि उसने मर्यादा नहीं रखी । महात्माओं को वृत्ति के कारण बीमारी नहीं होती । **श्री रामकृष्ण परमहंस को कैंसर हुआ था । श्री अरविंद को मूत्ररोग था । ऐसे महात्माओं को होती बीमारी प्रारब्धयोग से संबंध में आये हुए व्यक्तिओं के साथ के सहज**

तादात्म्य से भी हो और वह भी ऐसा सजीव भाव हो तभी । उसमें हर जगह एक समान कारण न भी हो । मुझे गुरुमहाराज ने कहा है, ''तुम्हें कहीं जाना नहीं । जिस जिस के साथ प्रारब्धयोग है, उन उनके साथ संबंध होने का है ।' इससे मैं किसी का - इस मौनमंदिर का भी प्रचार नहीं करता ।

अभी प्रकृति राजा बाद में पुरुष राजा

शब्द का एकसा लगातार उच्चारण आकाश-तत्त्व को विकसित करता है । आकाशतत्त्व विकसित होने से सत्त्वतत्त्व प्रगट होने पर रजस और तमस गौण हो जाते हैं । जिससे लोभ, क्रोध, काम, मोह अपने आप निर्मूल हो जाते हैं । पुरुषतत्त्व जागृत होने के बाद सील लगाये बिना प्रकृति कुछ नहीं कर सकती है । अभी प्रकृति राजा की तरह बरतती है, परंतु तब तो पुरुष राजा हो जाता है ।

वैष्णव धर्म का हार्द

यों शब्द यह बहुत बड़ा साधन है । अनुभविओं का अनुभव है कि शब्द के साथ भावना मिलने से उत्तम परिणाम प्राप्त होता है । वैष्णव धर्म के आचार्यों ने सभी कर्म भगवान के साथ जोड़ दिये । सभी प्रक्रिया भगवान को समर्पित करके ही करें । हर समय की प्रार्थना अलग । यह सहज साधना का ही रूप है, क्योंकि इस तरह भगवान को सतत याद रख सकते हैं । परंतु हम उसका हार्द भूल गये हैं ।

दि. १२-११-१९६०

हरि:ॐ

७. अखंड आनंद की शोध

सब अलग

इस सकल ब्रह्मांड में तारे, सूर्यमंडल, ग्रह इत्यादि दिखते हैं, उन सब में एक ही प्रकार के नियम नहीं हैं। पृथ्वी पर पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाएँ हैं। अवकाश में जाने पर वहाँ कोई दिशा नहीं मिलेगी। पृथ्वी के नियमों से वहाँ के नियम अलग होते हैं। पृथ्वी के और बाहर के वातावरण के नियम वहाँ लागू नहीं होते हैं। सूर्यमंडल, नक्षत्र, निहारिकाओं में सब में कोई एक नियम प्रचलित नहीं है। प्रत्येक का जैसा वातावरण होता है, वैसे उसके नियम होते हैं। हमारे में मनुष्य का आकार सही सब के अवयव भी समान होते हैं, परंतु रूप अलग होते है। प्रत्येक का व्यवहार और वर्तन करने की रीति भी अलग होती है। प्रत्येक के व्यवहार का मूल्यांकन भी अलग होता है।

चेतन का कार्य

हम यह कहते हैं कि चेतन है और चेतन में से ही सभी उत्पन्न हुआ है, वह सब गलत है। अनुभविओं ने कहा वह सही—परंतु चेतन होते हुए भी उसके गुणधर्म नहीं हैं—इसलिए यह भ्रम है। साक्षीपना, अंतर्यामीपना ये सब चेतन के गुणधर्म हमारे में नहीं हैं। इसलिए अनुभविओं ने कहा है कि हमारे में चेतन की गुणशक्ति व्याप्त नहीं है। उसकी मर्यादा हो गई है। वह कैसे हुई ? यहाँ से ग्रीड की बिजली का प्रवाह बहता है, परंतु उसकी मर्यादा कर दी गई। मुख्य लाईन में लगातार कितना भारी प्रवाह बहता है, परंतु

ट्रान्सफॉर्मर लगाकर उसे मर्यादित करके वितरित किया जाता है। इससे उसकी शक्ति कम हो जाती है। उसी प्रकार ब्रह्मांड रूप से चेतन है और उसकी शक्ति भी वही है, परंतु वह जिस जिस तत्त्व में प्रवेश करता है, उसमें वह उस तत्त्वरूप से कार्य करता है, यह नियम अनुसार होता है। वृक्ष, पशु, जलचर, मनुष्य इत्यादि योनि में चेतन प्रवेश करके वह उस-उस रूप से कार्य करता है।

मर्यादा माया

अनुभविओं ने अनुभव किया है कि चेतन के गुण और शक्ति हमारे में मर्यादित प्रवर्तमान है। इस मर्यादा को ''माया'' कहा है। चेतन होते हुए भी माया के कारण वह नहीं दिखाई देता। पृथ्वी पर मनुष्य ने पुरुषार्थ और परिश्रम से आश्चर्यकारक परिणाम प्राप्त किए हैं। जो संभव नहीं थी, ऐसी हकीकत सिद्ध की है। जिसे खोजने के लिए दिल पागल हो जाय, समर्पित हो जाय, न्योछावर हो जाय, तो कोई वस्तु सिद्ध कर सकते है। अब यह माया अर्थात् जो है—जो चेतनरूप है—उसमें मन न लगाकर जो मिला है—पत्नी, संतान, धन, प्रतिष्ठा, आबरू—उसमें मन लग जाता है। इस संसार में अपना दुःख न रोता हो ऐसा कोई नहीं है। कठिनाइयों का अंत नहीं दीखता। हम अनेक प्रकार की बीमारियों से अनेक रीति से परेशानी भोगते रहते हैं। हमें जिससे वेदना होती है, अनासक्ति होती है, उसीके साथ जुड़े रहते हैं। संसार में दुःख, आधि-व्याधि-उपाधि इत्यादि हैं ही यह निश्चित हकीकत है।

सच्चा सुख

हम किसी से पूछें कि जिस वस्तु तथा परिस्थिति के कारण आपकी शांति भंग होती है, उससे आप क्यों चिपके रहते हो ?

तो कहेगा कि उसका उपाय नहीं है। इतना सब दुःख सहन करने पर भी मन क्यों उसमें चिपका रहता है, यह एक बड़ी समस्या है। माया है। इससे उसमें लिपट जाते हैं, ऐसा कहा जाता है, यह बात गलत है। आपको उसमें से उठना नहीं है, निकलना नहीं है, आपको सच्चे सुख की सूझ-बूझ नहीं है। सच्चे सुख के लिए फना हो जाने की तत्परता नहीं है। संसार में रहते हुए भी अनेक प्रकार के कर्म करते हुए भी निष्पक्ष साक्षीभाव से रहा जा सकता है, यह प्रत्यक्ष अनुभव की हकीकत है, किन्तु उस प्रकार निष्पक्ष कब हो सकते हैं ? जब हमें ऐसा सूझे और हमारे में चेतन को पहचानने की ज्वालामुखी समान दहकती तमन्ना प्रगट हो तब। जहाँ तक ऐसा नहीं होगा, वहाँ तक साक्षीभाव से नहीं रह सकते हैं।

मानवयोनि में विकास

मनुष्ययोनि में संसार के प्राणिओं की किसी भी योनि से अधिक मिला है। हम हर क्षेत्र में विकसित हैं। हमारे मन, बुद्धि, चित्त और अहम् विकसित हैं। अन्य योनि में अहम् हमारे जितना विकसित नहीं है। देवयोनि उत्तम है। उसमें द्विधावृत्ति नहीं है, वहाँ एक ही प्रकार की मनोवृत्ति होती है। वहाँ सुख ही भोगना है, परंतु जहाँ एक स्थिति में पड़ा रहना हो, वहाँ संघर्षण नहीं होता, टक्कर नहीं होती, इसलिए विकास नहीं होता। जब कि मनुष्ययोनि में द्वंद्व है, उसके कारण टक्कर होती है। इसलिए वह विचार करता है। मनुष्य जब उलझन में होता है, तब उसका उपाय ढूंढ़ने के लिए उसकी बुद्धि कार्यशील हो जाती है।

संघर्षण का हेतु

व्यवहार में किसी व्यक्ति के साथ आपके अच्छे संबंध होंगे, वहाँ तक उसकी प्रकृति-उसके स्वभाव को आप नहीं पहचान सकोगे, परंतु जब संघर्षण होगा, तब आप उसकी प्रकृति को अच्छी

तरह पहचान सकते हो । यदि वह उदार दिलवाला होगा तो वह वैसा दिखेगा । यदि वह कपटी-प्रपंची होगा तो वह वैसा लगेगा। इसलिए संघर्षण पैदा हो तभी समझ आती है ।

हमारे शरीर में सतअसत हिंसाअहिंसा, सुखदुःख रहे इस प्रकार की रचना है । कोई कहे कि मैं सत्य ही कहता हूँ । वह गलत है । नीति-अनीति दोनों होंगे । हमारा प्रयत्न हो कि सत्य का ही आचरण करें, परंतु ऐसा करने वाले संसार में बहुत कम होते हैं। हम सब के साथ सद्भाव, अच्छा मेल रखने का प्रयत्न करें, परंतु सामने वाला ऐसा न रखे तो संघर्षण अवश्य होता है। फिर भी यह जो द्वंद्व हुआ है, उसका हेतु ज्ञान प्राप्त करने का है। हम कर्म करते हुए भी यदि लिप्त नहीं हो सकते तो हम अखंड आनंद के भोक्ता हो सकते हैं । मनुष्ययोनि विकसित हुई होने से उसे आनंद में रहना ही पसंद है । इसलिए अनुभविओं ने सोचा कि आनंद अखंड मिलता रहे ऐसा कुछ होगा या नहीं ? आनंद की खोज करते-करते लगा कि चित्त में समता रहा करे और निर्मोह, निरहंकार, निर्लोभ, निर्ममत्व यह सब प्रगट हो वैसी स्थिति हो तो मनुष्य निरंतर आनंद की लहरों में रह सकता है । ऐसे व्यक्ति को सांसारिक कर्म हमारे से अलग रीति से स्पर्श करते हैं । वह किसी से आवृत्त नहीं होता एवं लिप्त भी नहीं होता ।

अखंड आनंद की शोध

हमारा शरीर पाँच तत्त्वों का बना हुआ है । हमारे में पृथ्वीतत्त्व है। हम कश्मीर या हिमालय के जंगल में कहीं रमणीय प्रपात गिरता हो, वहाँ जाँये तो हमारा मन प्रसन्न होता है । परंतु स्त्रीपुरुष का या पुरुष स्त्री का रूप देखता है तो तुच्छता अनुभव करता है । कुदरत का रूप देखकर हम सात्त्विक आनंद का अनुभव करते

हैं और मनुष्य का रूप देखकर पार्थिव आनंद होता है । दोनों के बीच जमीन-आसमान का फर्क है । पहले प्रकार में कामना या विकार नहीं है, क्योंकि उसमें नैसर्गिकपन है । जबकि मनुष्य का रूप काम-विकार उत्पन्न करता है और इस तरह हमें पामर बनाता है । एक रूप सत्त्वगुण की तरफ ले जाता है, जबकि दूसरा रूप हमें गिराता है । हम द्वंद्व और गुण के कारण जीवदशा में रहते हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या इत्यादि में टकराते रहते हैं । यदि हम अखंड आनंद की शोध में निकले हैं तो हम गुणातीत होकर द्वंद्वातीत बनें तो हम सब से अलग रह सकेंगे और हम स्वयं उस आनंद का अनुभव कर सकेंगे ।

घर में प्रवेश करने की तमन्ना की आवश्यकता

पृथ्वी में तेल तो पड़ा था, परंतु किसी खास जगह पर है और खास रीति से निकाला जा सकता है, उसकी विद्या सीखनी पड़ती है । जिन्होंने विद्या सीखी, वे ही खोज सके । चेतन को खोजने की भी विद्या है, परंतु उसे जानने की हमें दरकार नहीं है और उसके लिए हमें अभ्यास करना नहीं हैं । हम तो हमारे संसार में मस्त हैं । गंगामैया के प्रवाह की तरह धारामय फना हो जाने की तैयारी के साथ साधन भी होना चाहिए । अनुभविओं ने तो उसके लिए अलग अलग-साधन खोजे । चाभी तो मिल गई । फिर सोचा कि समय बड़ा बंधन है । इसलिए समय को कैसे कम किया जाय और अनंत सुख का अनुभव कर सकें ऐसा साधन लेने का खोजा । तंत्र, हठयोग, कर्म आदि मार्ग भी निकले । उस मार्ग से भी चेतना का अनुभव किया जा सकता है । कोई नाली में होकर भी घर

में प्रवेश कर सकता है, तो कोई दरवाजे से भी प्रवेश करता है। परंतु घर में प्रवेश करने की तमन्ना होनी चाहिए ।

चेतन का अनुभव कब हो ?

कृष्ण भगवानने तो कहा है कि किसी भी मार्ग की उपेक्षा न करें । परंतु सरल से सरल उपाय नामस्मरण है । उसके द्वारा भी दूसरे योग जैसा ही परिणाम प्राप्त कर सकते हो, परंतु वह नाम कैसा होना चाहिए ? वह छोटे से छोटा होना चाहिए । उसके प्रति अभिरुचि होनी चाहिए । हृदय की धड़कन के साथ बोल सकें ऐसा होना चाहिए । नाभि, कंठ और ब्रह्मरंध्र को एक साथ स्पर्श करे ऐसा जप होना चाहिए । उस जप को लगातार करते रहने से धुन प्रगट हो, धुन में से लय प्रगट होती है और उसमें से एकाग्रता होती है और वह अखंड हो, तब केंद्रितता प्राप्त होती है और सच्ची भावना उत्पन्न होती है । वह भावना भी सघन होते-होते उसमें भी ऐसी अखंडता प्रगट हो कि जिससे चेतन का अनुभव हो ।

कर्म के परिणाम का आधार क्या ?

कर्म जिस भावना से किया जाता है, उसका वैसा परिणाम प्राप्त होता है । उत्तम कर्म करते समय भी यदि मन में बुरे विचार होते होंगे, तो उस उत्तम कर्म का परिणाम भी वैसे विचार के समान ही आएगा । उत्तम कर्म इससे उत्तम परिणाम नहीं । **कर्म करते समय आपका उद्देश्य, आपके विचार किस प्रकार के हैं वैसा परिणाम मिलता है । नकारात्मक कर्म करते समय भी मन इत्यादि करण उत्तम अवस्था में हों—विकार न हो—तो वैसे कर्म भी बंधनकर्ता नहीं होते । कर्म करते समय मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम्, किस स्थिति में हैं, उस पर कर्म का परिणाम अवलंबित है । यह दूसरी चाभी है ।**

ऐसा स्थान कहीं नहीं

संसार में रहें तब भी संसार का स्पर्श नहीं। मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् इत्यादि करणों को ऐसी तालीम मिले कि जिससे भावना की अखंडितता रहा करती है। भगवान का स्मरण करते करते ऐसी स्थिति प्रगट हो कि उसे अजपाजप तक ले जाय। निरासक्ति, निर्ममत्व प्रगट हो, तो ही सामने वाले का स्वभाव कैसा भी होगा फिर भी आप सद्भाव से रह सकोगे। इससे आपका किसीसे संघर्ष भी नहीं होगा और आप प्रत्येक से प्रेम करेंगे। भगवान का स्मरण ऐसा सरल साधन है। नामस्मरण हो सके इसलिए गुरुमहाराज की कृपा से ये मौनमंदिर बनाये हैं। आप यहाँ जैसा स्मरण घर पर तो क्या, परंतु जंगल में भी नहीं कर सकेंगे। यहाँ ३,७,२१ या २८ दिन से काम नहीं बनेगा और अभ्यास चालू रखना चाहिए। फिर भी जो कुछ किया है, उसके संस्कार भी नहीं जाते। उस से ताज़गी रहा करती है। जैसे दवा-इंजेक्शन का असर होता है; वैसा इसका भी असर होता है।

आरोग्य, ताजगी और ज्ञानप्राप्ति का स्थान

संसार में थकान लगती है। उस थकान को मिटाने के लिए —बैटरी चार्ज करने के लिए—स्फूर्ति प्राप्त करने के लिए यह प्रयोग स्थूल रूप से भी करने जैसा है। इसका अनुभव लेने जैसा है। इसके उपरांत स्वयं को पहचानने के लिए भी अंदर जो भरा हुआ है, उसे बाहर निकालने के लिए भी यह प्रयोग करो। मौनएकांत में रहकर भगवान का नामस्मरण करो। वहाँ अन्य कोई प्रवृत्ति नहीं होने के कारण हम स्वयं को पहचान सकते हैं। जो अंदर होगा वह बाहर नहीं होगा। बाहर तो शरीर को विचारों की

टक्कर भी रहती है । मन इत्यादि करणों की थकान उतारने और शुद्ध आरोग्य पाने यह प्रयोग करने जैसा है । मैं यह कल्पना की बात नहीं करता। अंदर बैठने वालों का वज़न बढ़ा है । शरीर में इतनी स्फूर्ति रहती है । ऐसा तीन-चार दिन में नहीं होगा । २१ दिन बैठने वालों में से किसी को ऐसा अनुभव हो सही ।

पूज्य श्रीमोटा की उत्तम सेवा

मैं सेवा के क्षेत्र में था । भगवान की कृपा से स्थूल रूप से भी सेवा हो सकी है । परंतु गुरुमहाराज ने कहा, **''यह स्थूल सेवा के बदले कोई भी एक जीव को भावना से ऊपर लाएगा तो उत्तम सेवा होगी'' स्थूल सेवा से कोई रागद्वेष से मुक्त नहीं होंगे, झगड़े ही होंगे ।** आपश्रीने मुझे किसी भी संस्था का सदस्य बनने से ही मना किया । उन्होंने कहा, ''सेवा करनी है तो प्रभुप्रेम के लिए भगवान की धारणा करते हुए सेवा करो । स्थूल सुख देने जाओगे, परंतु मनुष्य रागद्वेष वाले हैं । इससे झगड़े होंगे ।

महात्मा गांधीजी ने अहिंसा के लिए कहा, परंतु अहिंसा टिके कैसे ? पानी का प्रवाह नीचे की तरफ बहता है । उसे इकट्ठा नहीं करेंगे तो वह बह जायगा । **मद्रास में शास्त्रीआर सर्वेन्टस ऑफ इन्डिया सोसायटी के अध्यक्ष थे । उन्होंने गांधीजी को पत्र लिखा था कि समाज को अनिष्ट तत्त्व में से बाहर मत निकालो । तब गांधीजी ने उत्तर दिया था, ''आपकी बात सच है, परंतु हम गुलाम हैं, यह नर्क जैसी स्थति है । उससे बाहर आकर हम मार खायेंगे और मार खाते-खाते अच्छा बनना सीखेंगे । अहिंसा का तत्त्व रागद्वेष फीके हुए बिना टिकेगा नहीं'' इसलिए गुरुमहाराजने स्थूल सेवा छोड़कर यह**

करने को कहा । किसी भी व्यक्ति की भावना तिल जितनी भी ऊँची हो सकी तो वह ऊँची सेवा है । जिस जिस के साथ भगवान के विषय में संबंध है, उसके साथ प्रेम से बरत सकें तो वह भी बड़ी सेवा है ।

गुणदर्शन आवश्यक

भगवान का नाम लिया जाय तो ठीक और न लिया जाय तो भी कुछ नहीं । एक दूसरे के दोष को न देखें तो उत्तम । यदि दिख जाय तो उसके गुण देखिये । गुणों के प्रति विशेष महत्त्व दोगे तो सब के प्रति सद्भाव-सुमेल रख सकोगे । बुद्धि दोषों को ही देखेगी तो सुमेल नहीं रह सकेगा । यदि बुद्धि दूसरों के गुणों को देखेगी तो शांति प्राप्त होगी । हमें स्वयं के थरमामीटर (मापदंड) बने रहें । सब के साथ प्रेम, आनंद, सद्भाव से बरतेंगे तो सुख मिलेगा, शांति मिलेगी ।

तुम्हें कैसा स्वभाव रखना है, यह तो तू सोच कर, तुझे कैसा व्यवहार करना है, उसका तू विचार कर । **सुखी होना हो, सेवा करनी हो तो सब के साथ प्रेम से, सद्भाव से रहें तो यह सब से बड़ी सेवा है । उस स्थूल सेवा के बदले यह सेवा करो ।**

सच्चा त्याग

त्याग करने के लिए बहुत कुछ छोड़ना पड़ता है । यदि प्रेम से किया तो उत्तम । मुश्किल से, ऊब से किया तो विकृति उत्पन्न होगी । ऐसा कोई नहीं है जिसे दूसरों के कारण सहन न करना पड़ा हो । यदि कोई कहे कि मुझे सहन नहीं करना पड़ेगा तो वह बात गलत । मजबूरी से सहन करोगे तो विकृति उत्पन्न होगी । त्याग से तो शांति, प्रसन्नता, गुणशक्ति प्रगट होगी । ऐसा परिणाम

आये तो त्याग सच्चा । हम तो मजबूरी से (By force of circumstances) परिस्थिति के दबाव के कारण करते हैं, समाज के डर से करते हैं । यह गुण नहीं किन्तु अवगुण है । सच्चे त्याग से तो शक्ति उत्पन्न होती है और ऊर्ध्वगति होती है ।

त्याग के लिए भावना की आवश्यकता

जिस त्याग में भावना, हेतु की सभानता और आनंद है, ऐसे त्याग की आवश्यकता है । उसके लिए भावना की आवश्यकता है । वह ऐसे ही आकाश में से प्रवेश नहीं करेगी । वह भगवान के स्मरण रूपी यज्ञ से आती है । इसके सिवा दूसरा बड़ा यज्ञ नहीं है । किसी भी प्रकार के यज्ञ के लिए दस लाख रुपये खर्च करोगे तो भी उसका कोई अर्थ नहीं है । यहाँ (सूरत के जहाँगीरपुरा में) कुरुक्षेत्र के मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए बड़ा यज्ञ होने वाला है । परंतु वह धनराशि मंदिर के जीर्णोद्धार में ही खर्च होनेवाली है । **सच्चा यज्ञ तो एक दूसरे का प्रेम से सहन करने में रहा है ।** सहन करते-करते अगर गाली दो तो ऐसा सहन करना पतन की तरफ ले जाएगा । इसलिए उदारता और प्रेम से सहन करो ।

यज्ञ के व्यापार से सावधान

आजकल यज्ञ बहुत होते हैं । महात्मा लोग सच्ची सलाह नहीं देते । ऋषिमुनियों ने यज्ञ किये थे । परंतु उस समय धनधान्य की विपुलता थी । मंत्रों का आविष्कार हुआ था । उसका आवाहन होता था । उसका आवाहन कर सकें वैसे ऋषिमुनि थे । संसारी मनुष्य तो अविचारी कर्म करते हैं । मुंबई निवासी मेरे एक मित्रने कहा था कि एक बड़ा यज्ञ कराएगा । धन अच्छा प्राप्त होगा । मैंने मना कर दिया । **जैसे सट्टे का व्यापार है, ऐसे यह यज्ञ का भी**

व्यापार है । ऐसे यज्ञ मत करना । **एक दूसरे के लिए प्रेम से सहन करोगे तो वही सच्चा यज्ञ बन जायगा ।** कुरुक्षेत्र का मंदिर निर्माण हो तो वह उत्तम बात है, परंतु समाज में गलत बात की भावना फैले या समाज भ्रम में रहे वह योग्य नहीं है । धन की आवश्यकता है तो मेहनत करो, धन मिलेगा । भगवान का जीर्णोद्धार कैसा ? लोगों को उलटे रास्ते पर ले जा रहे हैं । महात्मा लोग आशीर्वाद दें और कृपा मिल जाएगी । लोग जब आशीर्वाद और कृपा की बात करते हैं, तब मैं अशांत हो जाता हूँ । ऐसा कहनेवाले आपको गलत मार्ग पर ले जा रहे हैं । मेरे पास डंडा हो तो वैसी बात करने वालों को जरूर मारता । पंसारी की दुकान पर दो पैसे की सौंफ खरीदने जाओगे तो क्या वह मुफ्त देगा ? कृपा लेने जाने वाला और देने वाला भी मूर्ख है । स्वयं द्वारा कर्म किये बगैर कुछ भी मिलने वाला नहीं है ! इसलिए स्वयं भगवान का स्मरण करो और वह भी न हो सके तो सब के साथ सद्‌भाव से व्यवहार करो तो वह भी पर्याप्त है ।

दिनांक ३०-१२-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

८. ऋषिमुनियों का उपहार

मानवदेह में चेतन

हमारे ऋषिमुनिओं ने लगातार संशोधन किया है । हमारे शरीर को अन्न की आवश्यकता है । बिना भोजन नहीं चल सकता । परंतु शक्ति तो अंदर से प्राप्त होती है । इसलिए उन्होंने अन्न को ब्रह्म कहा । यज्ञ में भी अन्न की आहुति देने लगे । हमारे शरीर में रहनेवाले वैश्वानर को भी अन्न की आहुति देनी पड़ती है । फिर आगे और विचार करने लगा कि अन्न तो स्थूल है । शरीर को सिर्फ अन्न की आवश्यकता नहीं है । उसे वायु की भी आवश्यकता है । इतना ही नहीं गरमी भी शरीर में है । पानी भी उतनी गर्मी से उबल जाय उतनी गर्मी शरीर में है । फिर भी इन सब के अतिरिक्त रूप से मानवदेह में चेतन रहा है । वह शरीर, जीव या प्राण से ऊपर का तत्त्व है । फिर, मानवशरीर में मन, बुद्धि, प्राण और अहम् भी है ।

बुद्धि का प्रज्ञा में रूपांतर

अब इस मन को दैवीतत्त्व में बदला जा सकता है । न बदल सके तो साधना द्वारा अधिकार किया जा सकता है । रावण ने पाँच तत्त्वों को अधिकार में कर रखा था । वायुदेव भी उसकी सेवा में हाजिर रहते थे । उतनी उसकी ज्ञानशक्ति थी । उसके बाद बुद्धि के बारे में संशोधन हुआ । तर्क, दलील और निर्णय करना ये बुद्धि के लक्षण हैं । यदि बुद्धि प्रज्ञारूप हो जाय तो अनंत विश्व, अनंत चेतना के द्वार खुल जाँय । चेतन का मुख सोने से ढका हुआ है । इसलिए उसके पार जाकर चेतन का अनुभव करो, तब उसकी शक्ति का पता लगता है ।

ऋषिओं की शोध

इसके बाद प्राण के क्षेत्र का संशोधन हुआ । आशा, तृष्णा, कामना, लालसा इत्यादि प्राण के लक्षण हैं । उसकी उपासना करते करते ऋषिओं को लगा कि उससे भी आगे चेतनतत्त्व होना चाहिए । ऐसा सोचते-खोजते हुए चेतनतत्त्व का अनुभव हुआ और प्रतीक द्वारा वेदोंमें गाया । आर्य लोग संस्कृति लेकर आये हैं । परंतु चेतन को पार्थिव तत्त्वों में उतारने का जो श्रम उन्होंने किया यह हमारी बुद्धि में नहीं उतर सके । मंत्रों की शक्ति द्वारा अग्नि भी उत्पन्न की जा सकती है । अनेक इच्छित फल प्राप्त किये जा सकते हैं । इस तरह, चेतन को पृथ्वी पर लाने के लिए उन्होंने भगीरथ प्रयत्न किये । इस तरह उन्होंने ऐसे कई गुप्त प्रदेशों के द्वार खोल दिये । अज्ञान की भी अनंत शक्तियाँ हैं । उसका संशोधन भी ऋषिओं ने किया । अथर्ववेद में ऐसे भी मंत्र हैं कि उसे सिद्ध करने से इच्छित कार्य हो सकते हैं ।

फिर भी ऋषिमुनियों और भक्तजनों ने आगे चलकर सोचा कि सामान्य जीव यह सब नहीं कर सकेंगे । संसार में त्रास, उलझन, कठिनाई, समस्या इत्यादि तो बुद्धि है, तब तक रहेंगे । उसमें से शांति-आश्वासन प्राप्त हो ऐसा कोई सरल साधन चाहिए । संसार के रागात्मक प्रत्याघात जीवों को अशांत कर देते हैं । **इसलिए संसारी जीवों को शांति मिले ऐसा साधन खोजते-खोजते ऋषिमुनिओं ने अनुभव किया की शब्द यह ब्रह्म है ।**

भगवान के नाम का उपहार

अनेक प्रकार के रागद्वेष और माया में फँसे हुए हो फिर भी भगवान के नाम रूपी शब्द की साधना करो, स्मरण कर सको तो शांति मिलेगी । उन्होंने शब्द द्वारा जो परिणाम प्राप्त किया, वह

योगविद्या या अन्य कोई भी साधन द्वारा प्राप्त किया जा सके ऐसा है। यह उन्होंने अपने अनुभव से लोगों को दिया। नामस्मरण एक ऐसा सर्वोत्तम साधन है कि उसकी शरण लेने से अनेक समस्याओं में उलझे होने पर भी शांति प्राप्त कर सकोगे। यह ऐसा एक बेजोड़ साधन है।

धन प्राप्त करना है ?

अनेक लोग पूछते हैं कि लक्ष्मी सहाय करती है। भगवान का नाम लेने से क्या दुःख मिट जायगा ? मैं उनसे कहता हूँ कि लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए बुद्धि का उपयोग करते हो या नहीं ? आप बिना बुद्धि के धन प्राप्त नहीं कर सकते हो। इस तरह धन से बुद्धि बढ़िया साधन है। परंतु हमारे मन, बुद्धि तो उद्वेग, पीड़ा, क्लेश से ग्रसित हैं तो धन कहाँ से प्राप्त कर सकोगे ? इसलिए मन-बुद्धि को ठीक रखने का सरल साधन भगवान का नामस्मरण है। संसार में हमारा रथ ठीक चल सके, अनेक प्रकार की उलझनें, कठिनाइयों, गुत्थियों, उपाधिओं में से शांति प्राप्त हो उसके लिए भगवान के नाम का साधन यह सरल साधन है। किसी भी प्रकार की बेचैनी हो, अशांति हो तो घर के कोने में, एकांत में बैठकर नाम लो तो चैन-शांति प्राप्त हो जायगी। उसके बाद विचार करोगे तो रास्ता मिलेगा। संसार के कार्य अच्छी तरह करने के लिए भी भगवान का नाम यह सरल उपाय है। ऐसा करते-करते भगवान के नामस्मरण का अभ्यास आगे बढ़े तो रागद्वेष कम हो, फीके पड़ेंगे।

देवासुर संग्राम

संसार में अनेक प्रकार के मनुष्य हैं। हमे नापसंदगी हो, मुख भी अप्रिय लगे, परिवार में भी मतभेद हो, अशांति हो, ऐसे समय

में भी ऐसे लोगों के साथ काम करना होता है । ऐसे समय में भगवान का नाम लोगे तो जागृति सहित होश होगा । ऐसे करते अनेक प्रकार के अलग स्वभाव वाले मनुष्यों के साथ के संबंध में हम आयेंगे, फिर भी अपूर्व शांति मिलेगी । हमारे स्वयं के मन की शांति रखने के लिए भी अच्छा भाव रखना आवश्यक है । मनुष्य एकदम चेतन का अनुभव नहीं कर सकता । चेतन अनेक प्रकार की बाधाओं से ढका हुआ है । जब तक वे बाधायें दूर नहीं होंगी, वहाँ तक हम जीवदशा की प्रकृति द्वारा ही कर्म करते हैं । प्रकृति अर्थात् द्वंद्व—दो विपरीत पहलू—उसके बीच में हमारा जीवन बहता है । हमारे में देवासुर संग्राम सदैव चलता है । परंतु हमें उसका होश नहीं । यह देवासुर संग्राम संपूर्ण ब्रह्मांड में चल रहा है । अनेक बार देव (ज्ञान) जीतते हैं और अनेक बार असुर (अज्ञान) जीतते हैं । यह सब प्रतीक रूप से हैं ।

लक्ष्मी वह महान शक्ति है

प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है । फिर, कोई भी जीव इसके बिना नहीं जी सकता । सुख और रस ये दो प्रकार के आंदोलन चलते रहते हैं । गरीब और धनवान स्वयं को मिली परिस्थिति द्वारा सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और धन द्वारा सुख है, ऐसा सब के मन में बैठ गया है । इसलिए सभी धन को महत्त्व देते हैं । उसके द्वारा हमारा जीवन ढक गया है ।

लक्ष्मी यह तो दैवी शक्ति है । धन सुखी होने का साधन है यह सही, परंतु **जो धन का सद्उपयोग करता है, उसका व्यभिचार नहीं करता, वह धन द्वारा सुखशांति प्राप्त कर**

सकता है । अन्यथा लक्ष्मी वह महान शक्तिरूप है । उसका तनिक सा भी दुरुपयोग से तो आफत खड़ी होने वाली है । इसलिए, उसके लिए मिथ्या प्रयत्न करना व्यर्थ है । इसलिए ऋषिमुनिओं ने त्याग करके भोगने की भावना फैलाई है । **''तेन त्यक्तेन भुंजिथाः''** । अबे, यह तेरे बाप का नहीं है । त्याग करके उपभोग करोगे तो शांति और अनंत काल का सुख मिलेगा । भगवान के प्रसाद रूप से जो बाकी रहे उसका ही भोग करो । सुखी करो और स्वयं भी सुखी रहो, यही भावना आज समाज में अन्य रीति से प्रसारित हो रही है । साम्यवादी चीन और रशिया ने क्या किया है ? धनवानों का संहार करके गरीबों को बाँट दिया है । पृथ्वी पर सभी जगह ऐसा चल रहा है । अनेक प्रकार के विचारों का आंदोलन प्रसारित हो रहा है । शुतर्मृग रेत में मुख छुपा देता है, इससे उसकी मृत्यु टल नहीं जायगी । हमारे देश में भी ऐसा आंदोलन आ रहा है । यदि हम ज्ञानपूर्वक समझेंगे नहीं तो हमारे यहाँ भी ऐसा ही होगा ।

पूज्य श्रीमोटा की चेतावनी

हमारी कमाई का दस प्रतिशत हिस्सा धर्मादा के रूप में खर्च करने की भावना आचरण में थी । आज यह भावना नहीं है । आज तो पाँच के दस, दस के पचास और पचास के सौ किस तरह हो सकें ऐसी स्वार्थवृत्ति केन्द्रित हो चली है और यह वृत्ति जोर पकड़ती है, तब उसके विरुद्ध की वृत्ति भी उतने ही जोर से विद्रोह करती है। मनुष्य जैसे-जैसे स्वार्थी होता गया, वैसे-वैसे उसके सामने आंदोलन चलते हैं । यदि हम नहीं समझेंगे तो हमारी हालत भी चीन-रशिया जैसी होगी ।

गूढ़ साधनों के लिए पात्रता

अब मैं असली बात पर आऊँ । चेतन का अनुभव करने के लिए अनेक साधन करके अनुभव किया कि वे अत्यंत गूढ़ हैं और सामान्य व्यक्ति द्वारा उसका प्रयोग नहीं हो सके ऐसे हैं। उसे कहने से कोई आचरण नहीं कर सकता । कई लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान में ऐसे लोग दूसरों को देते नहीं है, परंतु ऐसे साधन ग्रहण कर सकें ऐसे शक्तिशाली लोग भी नहीं होते हैं। सूर्यनारायण का संपूर्ण प्रकाश ग्रहण कर सकें ऐसा पात्र हो तो ग्रहण कर सकें । उसी प्रकार **अनुभविओं विद्या-ज्ञान देने को उत्सुक होते हैं, लेकिन हम उसे ग्रहण कर उपयोग कर सकें ऐसी योग्यता वाले नहीं होते हैं ।** इसलिए हर कोई गूढ़ साधन नहीं कर सकता । सब कोई कर सके ऐसा साधन मात्र भगवान का नामस्मरण है ।

आज चेतन का अनुभव करने के लिए जरूरी भावना नहीं है । उसका अनुभव करने के लिए तो दहकते ज्वालामुखी जैसी भावना होनी चाहिए । जहाँ तक ऐसी भावना प्रगट न हो, वहाँ तक अशांति में भी हलकापन प्राप्त करने के लिए भगवान का स्मरण, भजन, प्रार्थना, इत्यादि करना आवश्यक है ।

दिनांक २४-१-१९६१

॥ हरिः ॐ ॥

९. मन महाराज की सहाय

अणु-परमाणु की लीला

यह संसार और पृथ्वी जिन तत्त्वों से बने हुए हैं, उन्हीं तत्त्वों से संपूर्ण ब्रह्मांड़-पृथ्वी, तारामंडल इत्यादि बने हुए हैं । जिसे हम पृथ्वी (Matter) तत्त्व कहते हैं, वह भी बिना चेतन का नहीं है। सभी सख्त धातुओं का पृथक्करण करते हुए खोजा है कि यह सब अणु-परमाणु का बना हुआ है । अणु-परमाणु के अलावा कुछ नहीं है । प्रकृति में द्वंद्व है । Positive और Nagative ये दो तत्त्व एक दूसरे के आगे पीछे घूमा करते हैं । यह गति-क्रियमाण है, फिर भी दृश्यमान है । अणु से परमाणु ज्यादा सूक्ष्म है । इससे वह तो दिखाई ही न दे । चेतन का स्वरूप ऐसा ही है । उसमें गति है, क्रिया है फिर भी वह दृश्यमान नहीं है; वह दीखता नहीं है । फिर भी जो दिखता है, वह तो माया है । **माया यानी व्यर्थ नहीं ।** यह सब दिखता है, वह शक्ति नहीं है ऐसा नहीं है । इसमें भी लगातार गति होती है । इससे शरीर में भी शक्ति बनी रहती है ।

पल का समय का छोटे से छोटा भाग माना है । सेकंड से भी वह छोटा भाग है । उससे भी कम भाग में शरीर में अणु का स्फोट हुआ करता है । शरीर में शक्ति का जो अनुभव होता है, वह अणु के ऐसे स्फोट के कारण है । इससे शरीर भले ही दिखे, परंतु वह अणुपरमाणु की शक्ति का बना हुआ है ।

दूसरों के बारे में सोचने से शक्ति का क्षय

हम इस बारे में सोचते नहीं हैं, इससे स्वयं को हम लाचार बनाते हैं । हमारे में चेतन है, परंतु जीवदशा के कारण हमें उसका ख्याल जागृत नहीं होता है । परिणामस्वरूप जीवदशा के कारण हम हमारी शक्ति का क्षय करते हैं । परंतु यदि हम चेतन के बारे में, शक्ति के बारे में रचनात्मक रीति से विचार करें तो हमारे में अहिंसा, साहस और अन्य प्रकार की शक्तियाँ बढ़ती हैं । हम बहुत नकारात्मक सोचते हैं । प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के लिए न सोचकर दूसरों के बारे में ज्यादा सोचता है और इस तरह शक्ति को नष्ट करता है । दूसरों के बारे में सोचनेवाला स्वयं के जीवन में कुछ प्राप्त नहीं कर सकता । वह स्वयं को सुधार नहीं सकता । बल्कि वह स्वयं की शक्ति नष्ट करता है ।

किसी व्यक्ति के पास पाँच हजार रुपये हों तो उसे व्यर्थ खर्च करने से पहले कई बार सोचेगा, क्योंकि उसे उन रुपयों की कीमत है । दिमाग तो उससे भी अधिक कीमती धन है । विचार रूपी धन है, क्योंकि दिमाग वह विचारों का केन्द्र है । उसका रचनात्मक रीति से उपयोग करें तो शक्ति में अवश्य वृद्धि होगी । **दूसरों के बारे में सोचने से हमारी शक्ति का नाश होता है ।** इसलिए विचार के उस केन्द्र को सद्‌भावना से शिक्षा देकर शक्ति और गुण किस तरह बढ़े उस तरह सोचने की आदत डालें तो गुण और शक्ति विकसित होने लगेगी । गुण और शक्ति स्वाभाविक रूप से चेतन के साथ संलग्न है । इसलिए नकारात्मक विचारों को छोड़ना चाहिए। और यदि **हम शांति, प्रसन्नता इत्यादि का अनुभव करना चाहें तो दूसरों के बारे में सोचना छोड़ देना**

चाहिए । स्वयं ही स्वयं की जाँच करें और वह भी सर्वोत्तम रीति से कैसे हो उस का विचार करें । दूसरे क्या कर रहे हैं, उसे देखना नहीं । **जो व्यक्ति दूसरे की चिंता की टोकरी सर पर उठाकर फिरता है, उसे ही बीमारी का हमला होता है, वह शक्तिहीन होता है । बीमारी का आक्रमण न हो इसलिए स्वयं के बारे में विचार करना ही उत्तम है ।**

किस बारे में विचार करें ?

मुझसे कई पूछते हैं, ''संसार में हम कई व्यक्तिओं के साथ जुड़े हुए होते हैं । तो उनके बारे में बिना सोचे कैसे रह सकते हैं ?'' मैं कहता हूँ, ''कर्म तुम्हें करना है; अन्य व्यक्ति को नहीं । तुम सिर्फ उसके गुण के बारे में विचार करो ।'' मनुष्य में गुण और अवगुण दोनों रहे होते हैं । इसलिए सदा उसके गुणों के बारे में ही विचार करो । जब भी किसी के बारे में नकारात्मक (खराब) विचार आयें, तब उसके अच्छे गुणों का विचार करो । इस तरह मनुष्य अपने मन को अच्छा बनाये-सीधा करे तो मनमें सुविचार आयेंगे । इस तरह रचनात्मक विचार (Positive thinking) करने से लाभ होगा । हम इसलिए यदि रचनात्मक विचार करने की आदत डालेंगे तो वस्तु का हल करने की भी आदत पड़ेगी । किसी भी उलझन, कठिनाई, समस्या में भी रचनात्मक रीति से विचार करने से शांति, प्रसन्नता बनी रहेगी और उसका हल भी अच्छी तरह से कर सकेंगे ।

उलझन किस तरह सुलझेगी ?

जब-जब उलझन-समस्या आये, तब उसमें उलझते हुए न रहकर हम मन के रुख को दूसरी तरफ मोड़ें । स्मरण, भजन या मित्र के साथ बात करें तो मन का रुख फिरता है और उसमें समता

प्रकट होती है । यदि इस तरह बरतते रहें तो प्रश्नों का, उलझनों का, समस्याओं का हल अच्छी तरह कर सकेंगे और इस तरह नहीं सोचेंगे तो उलझते रहेंगे और कोई समाधान प्राप्त नहीं कर पायेंगे ।

संसार में अच्छी तरह कर्म करने से मन धैर्ययुक्त और सहनशील हो तो मन काबिल बनेगा और कर्म अच्छी तरह से पूरे होंगे । अंत में हम सुखी होंगे । हमारे द्वारा किसी को उद्वेग नहीं होगा । गीता के दूसरे अध्याय में श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है, 'जो किसी को उद्वेग नहीं करता है और जो स्वयं अपने को उद्वेग नहीं करता, उसे स्थितप्रज्ञ समझना चाहिए ।'

किस तरह सोचें ?

हमें अपने बारे में सोचना है, परंतु दोष या विकार-वासना के बारे में नहीं सोचना है । यह सब तो कमजोरी के ढेर बढ़ायेंगे । दोष का पता लगे यह आवश्यक है, परंतु उसको दूर करने के लिए कैसे मंथन कर रहे हैं, क्या प्रयत्न करते हैं, उसे सोचना है । उसमें से निकल जाने के लिए कैसे भगीरथ प्रयत्न, जोश, उत्साह, उल्लास प्रकट हुए हैं, यह देखना-सोचना आवश्यक है । ऐसा अनुभव में न आता हो तो मनुष्य ऊपर नहीं उठ सकता । यह सब करने के लिए भी आंतरिक बल चाहिए । उसके लिए शास्त्रकारों-ऋषिमुनिओं ने शोध की है कि भगवान का नामस्मरण उत्तम से उत्तम उपाय है । भगवान के नामस्मरण की कामयाबी अवर्णनीय है । फिर भी सभी उसकी शरण ले सकते हैं । उसके नाम की स्मरणशक्ति अगर आधार में प्रकट हो तो अनंत गुना कार्य कर सकते हैं । उसकी शक्ति ऐसी प्रचंड है कि जिससे आप इच्छित कार्य कर सकते हो । यह तो अनुभव से सिद्ध कर सकते हैं । इस प्रकार आचरण करें तो पता लगे ।

मन की महानशक्ति-उसका परिणाम

सब से पहले तो स्वयं के बारे में सोचना चाहिए; दूसरों के संबंध में विचार न करें। दोष तो किसी के भी नहीं देखने चाहिए। दूसरों के दोष देखने से तो मन ज्यादा दुर्बल और क्लेशवाला हो जायेगा। अच्छी तरह जीना हो तो सदा स्वयं के बारे में सोचें और उसके लिए आंतरिक बल प्राप्त करना हो तो भगवान का स्मरण, सत्संग, सद्वाचन इत्यादि में मन को रोकें। यह सब करते रहेंगे तो ऐसी शक्ति प्रकट होगी कि जिसके बराबर ब्रह्मांड में कोई दूसरी शक्ति नहीं है। उससे तो ''**अहम् ब्रह्मास्मि**'' का अनुभव होगा।

हमारी क्या गति है ?

हम प्रकृतिमय हो गये हैं, इसलिए प्रकृति को हम पहचानते नहीं। हम स्वभाव को भी पहचानते नहीं। हम तो मनुष्य होते हुए भी जैसे पशुयोनि में हैं, क्योंकि हम जिस विषयविकार को भोगते हैं, उसके बारे में भी हमें भान नहीं है। हम उसका विचार भी करते नहीं। पशु कैसा भी कर्म करे तो उससे उसे आपत्ति नहीं है, उसका उसे बंधन नहीं है, क्योंकि वह तो सिर्फ कर्म भोगता है। परंतु मनुष्य को तो अच्छे या बुरे कर्म करते समय विचार होते हैं और उस तरह अनेक गुना प्रारब्ध बढ़ता रहता है। तुम्हें बुरा लगे तो भले फिर भी मैं कहता हूँ कि पशु प्रारब्ध बढ़ाता नहीं। हम तो प्रारब्ध बहुत बढ़ाते हैं, पोषित करते हैं। हम तो हर पल राक्षसों को जन्म देते हैं। विचार की रीति से मुझे यह हकीकत लगती है।

मनुष्य सावधान नहीं बनता। जागृति नहीं रखता। इससे उसे यह बात हकीकत रूप से नहीं लगती। उसे चेतन का पहलू समझ में नहीं आता। इसलिए नया प्रारब्ध बनाते जाता है। दो मक्खियों

में से एक मक्खी शहद के छत्ते पर बैठती है और दूसरी गंदगी पर बैठती है । हमें छत्ते पर बैठी मक्खी पसंद है, परंतु हमें हमारे स्वयं का भान जागता नहीं । जिसे ऐसा भान जागता है, उसका उत्थान होता है ।

दंभ प्रति सावधान

ऐसा जिसे उदित नहीं होता, वह तत्त्वज्ञान की बातें करे या वैसी गप्पें लगाये उसे मैं पसंद नहीं करता । वह तो ऐसी शक्ति का उदय हो, तब वैसी बातें करना योग्य है । चेतन यह तो गुण और शक्ति के साथ संलग्न है । पास में पाँच रुपये हों और हजार रुपये हों इतना जोर रखें उसे हम कैसा कहेंगे ? लोग बात-बात में भगवान पर विश्वास की बात करते हैं, परंतु उन्हें सच में किसी पर विश्वास नहीं है । मेरे वश में हो तो ऐसों को दो डंडे, मार दूँ । परंतु मैं वैसा नहीं करता हूँ । क्योंकि ऐसा करने से भी होश में आनेवाले नहीं है । स्वयं पर या परिवार पर भी उन्हें विश्वास नहीं है । यह तो मात्र सतही बोलने का रिवाज़ पड़ गया है । **भगवान पर किसी को भरोसा नहीं है ।** यह तो खाली दंभ उत्तेजित करने की बात है । दंभी कभी आगे नहीं बढ़ सकता ।

सुखशांति का मार्ग

यदि सुखी होना हो, शांति प्राप्त करना हो तो दूसरी बात जाने दो । विचार करने की रीति बदलो । सदा अपनी कमजोरियों को पहचानो, उसमें से बाहर निकलने का रास्ता ढूंढ़ो । जो स्वयं प्रसन्न रहता है, उसे उसी प्रकार के आंदोलन मिलते हैं । वातावरण में तो हरप्रकार के आंदोलन होते हैं । हमारे में जिस प्रकार की भूमिका हो, उस प्रकार के आंदोलन आकर्षित होते हैं और वे दिमाग में घुस जाते हैं । हम शक्ति का आवाहन करेंगे तो वह अपने आप प्रवेश कर सकती है । परंतु यह सब संभव हो, इसलिए हमें अपने

विचार करने की रीति बदलनी चाहिए, परंतु उस पद्धति का प्रयोग कब करें ? सुखी होना हो और उसका भान जागृत हो, तब इस पद्धति का प्रयोग कर सकते हैं । ऐसा नहीं है कि हमें सुखी नहीं होना है, परंतु सुख किसे कहेंगे ? इसका हमें भान नहीं है । यह तो बहुत सीमित सुख की बात है, परंतु चेतन के सुख को प्राप्त करने की भावना हमारे में जागृत नहीं हुई है । ऐसे सुख की तीव्र उत्कंठा जागे तो भगवान की परम कृपा । ऐसा सुख प्राप्त करने के लिए भी विचार करने की आदत बदलनी ही पड़ेगी । **यह संसार तो आनंद के लिए है, परंतु हम नरक पीते हैं ।** इसलिए सुख, शांति और तटस्थता विकसित करने की आतुरता जागृत नहीं हुई है । आतुरता जागे तो जीने की पद्धति अवश्य बदल सकते हैं। **यदि मनुष्य दूसरों के बारे में सोचना छोड़ दे और उसमें से मुक्त हो जाय और सिर्फ अपने बारे में ही सोचने का प्रयत्न करता रहे तो अनेक प्रकार की उलझनें, कठिनाइयों, समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकेगा ।** वैसी स्थिति में वह अन्य को भी सलाह देने योग्य हो सकेगा । इतना कर सके तो भी कई तरीके से सुखी हो सकते हैं, परंतु उसके लिए आंतरिक शक्ति प्राप्त करने के लिए कोई बलवान शक्ति चाहिए । **जैसे इंजन चलाने के लिए बिजली, क्रूड ऑईल और मिट्टी का तेल चाहिए, वैसे आंतरिक बल के लिए भगवान का नामस्मरण, भजन, प्रार्थना और सद्‌वाचन आवश्यक हैं ।**

प्रयत्न-प्रयोग आवश्यक

दिन के चौबीस घंटों में से आठ घंटे नींद के निकालने के बाद बाकी के सोलह घंटे अगर प्रयत्न करेंगे तो बदलाव का अनुभव अवश्य होगा । प्रयत्न करेंगे तो मालूम पड़ेगा, परंतु हमें

अभी उसके लिए गरज़ प्रगट नहीं हुई है । यह तो आत्मबलिदान करके फना होने की उल्लासपूर्ण तत्परता के बिना इस मार्ग का सुख कोई नहीं भोग सकता । बातें करने की यह हकीकत नहीं है । स्वतः प्रयोग करने की यह हकीकत है । प्रयोग करें तो अनुभव कर सकते हैं ।

भगवान ने हमें बुद्धि दी है, परंतु सुख, शांति, तटस्थता किसे कहते हैं, उसका हमें ख्याल नहीं है । मनुष्य दूसरों के बारे में ही सोचते हैं । कई व्यक्ति मेरे पास बातें करने आते हैं, परंतु वे दूसरों के बारे में ही कहते होते हैं, स्वयं के बारे में कोई कुछ नहीं कहते । जब ऐसा देखता हूँ, सुनता हूँ तब ऐसा लगता है कि वह मार्ग भटक गया है । **जो सच्चे अर्थ में स्वयं को खोजता हो वैसा कोई नहीं आता । जब मैं ऐसे लोगों का सुनता हूँ, तब मुझे ऐसा लगता है कि यह दुःखी होने के ही लायक है ।**

सुख प्राप्त करना है तो-

इसलिए मेरी आप सब से प्रार्थना है कि **सुख प्राप्त करना हो तो स्वयं के बारे में ही सोचो ।** आपकी मृत्यु हो जायगी तो क्या होगा ? किसी के मरने से सब टूट पड़ा सही ? इसलिए किसका ऊहापोह करते हो ? किसलिए अन्य का बोझ लेकर फिरते हो ? चित्तरंजनदास ने मृत्यु के समय भजन गाया था कि 'मेरे ज्ञानगुमान की गठरी उतराना रे' -हम भी टोकरा उठाकर फिरते हैं । दूसरा चाहे जो करता हो वह करे । अबे, हमें कोई पूछता तो है नहीं, तो फिर दूसरों के बारे में क्यों सोचते हो ? स्वयं के बारे में ही सोचो; उसके लिए आंतरिक बल प्राप्त करने के लिए भगवान का नामस्मरण करो । मैंने इसका अनुभव किया है । मैं बहुत

कमजोर, नरम था, मिरगी हो गई थी, सिर पर कर्ज हुआ था। गुरुमहाराज की कृपा से भगवान के नाम की शरण प्राप्त हुई थी।

पूज्य श्रीमोटा की व्यावहारिक सलाह

मेरी आपसे विनती है कि कर्ज मत करना; करो तो सगे संबंधियों से कर्ज लेना ही नहीं। बाहर से लेना। भगवान की कृपा से संसारिओं को यह सलाह देता हूँ। मैंने सगेसंबंधियों से कर्ज लिया था और उनके मर्मवचन-ताने सुने थे। सगे-संबंधियों से कर्ज लोगे तो वैसा सुनना पड़ेगा। भगवानने मुझे उसमें से जगाया और विचार करने की पद्धति जागी। मैंने ''जीवनसंग्राम'' वैसे ही नहीं लिखा है, उसमें मैंने खुद का अनुभव लिखा है। **सुखी होना हो तो विचार करने की पद्धति को बदलो। उसके लिए भगवान का स्मरण, भजन, सत्संग इत्यादि करो, उसकी भावना विकसित करो, इससे आंतरिक शक्ति प्राप्त होगी और जीवन सुखी होगा।**

दिनांक ३१-१-१९६१

॥ हरिः ॐ ॥

१०. अंतःकरण की शुद्धि

मानवजन्म का महत्त्व

मनुष्यशरीर पाँच तत्त्वों का बना हुआ है । संपूर्ण ब्रह्मांड में वैसे दूसरे जीव नहीं हैं ऐसा नहीं है । कोई आकाशतत्त्व का बना हुआ हो, तो कोई आकाश और वायुतत्त्व का बना हुआ हो । इस तरह पाँच तत्त्वों के विविध-प्रकार के पर्मीटेशन-कोम्बीनेशन के नियम अनुसार असंख्य जीव हैं, परंतु चेतन का अनुभव करने लायक तो ऐसी योग्यतावाला सिर्फ मनुष्यशरीर है । इससे भक्तों ने कहा है कि मनुष्यजन्म तो दुर्लभ है । इसलिए एक भजन में भक्त ने गाया है, **''नहीं ऐसो जन्म बार-बार''** ।

स्वयं को सुधारना यही सेवा

मनुष्यशरीर बार-बार नहीं मिलता है ऐसा नहीं है । ऐसे तो अनेक जन्म लेने पड़ते हैं । इस शरीर में पाँच तत्त्व हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और अंदर पाँच करण हैं । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् को अंतःकरण कहा जाता है । मनुष्य-शरीर की यह सचमुच रचना है और शरीर की यह विशेषता है । मनुष्य व्यावहारिक प्रवृत्ति या कार्य इत्यादि करता है, वह उसके मन, बुद्धि को आभारी है । मनुष्य में यदि काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा, तृष्णा न हो, तो वह प्रवृत्ति नहीं कर सकता । उसकी गढ़ाई प्राण द्वारा हुई है, अतः वह कर्म किया करता है । **आशा, तृष्णा से रहित किये हुए कर्म से प्राण की शुद्धि होती रहती है । यदि काम, क्रोध, लोभ, मोह में अतिशयता न हो तो प्राण ऊर्ध्वरेख लगे । प्राण ऊर्ध्वरेख हो तो सद्भाव और सत्कार्य**

की वृत्ति उत्पन्न होती है । यदि मनुष्य में एक दूसरे की भलाई करने की और प्रभुप्रीत्यर्थ दूसरे का अच्छा करने की भावना नहीं होगी तो पतन होगा । ''मैं दूसरों की सेवा करता हूँ'', ऐसी भावना से मनुष्य का अहम् बढ़ता है । जो स्वयं की सेवा नहीं करता, वह अन्य की सेवा कैसे करेगा ? जिसमें अहम्, अरुचि, अभिमान इत्यादि कम न हुए हों तो वह अन्य की सेवा करने की योग्यतावाला नहीं है । यहाँ जो आता है, वह दूसरों के बारे में बात करता है; किन्तु पहले तू शुद्ध हो न ! तेरे रागद्वेष पूरे फीके कर, पूरे संसार में जिस-जिस के साथ संबंध बनता है, उन सब के साथ प्रेम, त्याग, उदारता और सहानुभूति कर विकसित कर ।

आर्युवेद का हेतु

प्रत्येक कर्म भगवान के प्रेम के लिए करना होता है । ऐसी भावना रहेगी तो शुद्धि हुआ करेगी । शुद्धि होने के लिए कई प्रकार और मार्ग हैं । ऋषिमुनिओं शुद्धि के लिए साधना करते थे, परंतु शरीर की भी कई अड़चनें हैं । बुखार आये, सर्दी हो जाय, वात, पित्त और कफ का प्रकोप हो । यह सब न हो और शरीर स्वस्थ रहा करे, उसके लिए भी साधना का मार्ग खोज निकाला । साधना हो तो शरीर अड़चन रूप न बने । इसके लिए आयुर्विद्या का अविष्कार हुआ । साधना के कारण इस शास्त्र का आविष्कार किया गया । पश्चिम में ऐलोपैथी का विकास हुआ है, परंतु उसका हेतु भगवान की सेवा करने का नहीं है; जब कि आयुर्वेद तो भगवान की भक्ति हो उसके लिए, शरीर योग्यतावाला बने और रहे उसके लिए इस शास्त्र का आविष्कार हुआ है । उन्होंने यह भी खोज निकाला कि वातावरण में असंख्य बीमारियों के कीटाणु फैले हुए

हैं, वे किटाणु हमारे शरीर में प्रवेश करते रहते हैं । उन्हें बाहर कैसे फेंकना उसकी विद्या वैद्यों ने शोध की है ।

मनुष्यदेह में ही विकास की शक्यता

मनुष्यशरीर द्वारा चेतन की शोध कर सकते हैं । अन्य किसी भी योनि के शरीर से यह नहीं हो सकता । यह हकीकत बुद्धि से समझ में आये ऐसी है । द्वंद्व और गुण का यह शरीर बना हुआ है । दो विपरीत पहलुओं के बीच जीवन होता है । सुख-दुःख, प्रकाश-अंधकार, शांति-अशांति इन विपरीत पहलुओं के बीच संघर्षण होता है । इसलिए चेतन का रहस्य प्राप्त करने, ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्यशरीर में रचना की है । कोई पूछते हैं, ''भगवान ने यह सब क्यों किया ? यह सब न होता तो मनुष्य सुखी होता ।'' मैं कहता हूँ कि ''सुखी नहीं होता, परंतु जड़ होता ।'' देवयोनि में सुख है, यह सच्ची बात है, किन्तु वहाँ विकास नहीं है । विकास होने के लिए अवकाश भी नहीं है । मनुष्ययोनि में ही विपरीत पहलुओं होने के कारण विकास की संभावना है ।''

बुद्धि द्वारा विकास

मनुष्य की प्रकृति में जो बुद्धि रखी है, उससे सब समझा जा सकता है । बुद्धि न होती तो मनुष्य वृक्ष, जलचर, और पशु जैसा स्थगित हो जाय । उसका विकास नहीं हो सकता ।

शेषशायी भगवान विष्णु क्षीरसागर पर सोये हैं । साँप के अनेक मुँह हैं । अनंत मुँह द्वारा ज्ञान का यह प्रतीक है । बड़ का वृक्ष भी ज्ञान का प्रतीक है । उसका फैलाव होता रहता है । यही सत्य है । ज्ञान प्राप्त करने के लिए संकुचित नहीं रहना चाहिए । बुद्धि ज्ञान प्राप्त करने-अनुभव करने के लिए है ।

भगवान की तरफ मुड़ो

प्रकृति के बारे में समझ मनुष्य बुद्धि के द्वारा प्राप्त करता है। हम चेतन का रहस्य खोजें उसके लिए भगवान ने बुद्धि दी है, परंतु उसे खोजने हमारे में सचमुच झंखना जागती नहीं । संसारव्यवहार में हम जिस तरफ हमारा मुँह मुड़ गया हो तो उस तरफ की समझ आये । यदि भगवान की तरफ मुँह मुड़ गया हो तो उस तरफ की समझ आये । जिस तरफ मुँह मुड़ा हो, उस तरफ की समझ प्रगट होती है, उस तरफ का हल मिले ।

पहले प्राण की शुद्धि

बुद्धि यह चेतन के नजदीक का अंग है । उसे हम रागद्वेष, काम, क्रोध-इत्यादि से रंगकर और ढककर रखते हैं। जिस तरह हम जिस रंग के काँचवाले चश्मे पहनते हैं, उस रंग का जगत दीखता है । वैसे हम बुद्धि को ऐसी रंगी हुई रखें तो सत्य हकीकत नहीं दिखेगी। सच नहीं समझ सकेंगे । बुद्धि को शुद्ध करने के लिए प्राण की शुद्धि होनी चाहिए, क्योंकि गंदगी के क्षेत्र में जायेंगे तो वहाँ गंदगी की दुर्गंध ही आएगी । वहाँ इत्र की सुगंध कहाँ से मिलेगी ? इस संसारव्यवहार में लिप्त हैं तो भावना किस तरह प्रगट होगी ? परंतु यदि तत्परता पैदा हो तो संसार के सभी कर्म करते-करते भी शुद्धि हो सकती है । संसार में हमें कर्म तो करने ही पड़ते हैं, परंतु लोभ न रखें । पाँच के पच्चीस क्यों नहीं ? पच्चीस के पचास क्यों नहीं ? ऐसी धारणा नहीं रखें । अपने-आप भले मिले । वृत्ति रखें और ऐसी भावना विकसित करें तो वह संभव है, किन्तु अपने आप वह सत्कर्म में खर्च करने की भावना नहीं होती । वैसा न हो तो कोई बात नहीं, परंतु तू लोभ मत रख ।

कर्म अनिवार्य - भावना आवश्यक

अर्जुन युद्ध करने से मना करता है, परंतु भगवान कहते हैं, ''शेखी मत मारो।, तुम्हारा स्वभाव ही तुम्हें युद्ध में खींच लायेगा। इतने सब युद्ध किये हैं तो युद्ध करने का स्वभाव कहाँ जायगा ? युद्धभूमि पर जब घोड़े हिनहिनायेंगे, तब तुम्हारी प्रकृति और स्वभाव ही तुम्हें वहाँ खींच जाएँगे।'' ''पापपुण्य का प्रश्न ही न रहे, इसलिए कर्म ही न करना''। ऐसी समझ ही मूर्खता है। जीवननिर्वाह के लिए भी हमारे हिस्से में आया हुआ काम तो करना ही है। जो कर्म हमारे हिस्से में आये, उसे सर्वोत्तम रूप से करना चाहिए, जैसे-तैसे निपटाना नहीं, अन्यथा उत्तम गुण प्राप्त नहीं होंगे। कर्म तो सद्गुरु है। उसे सर्वोत्तम रूप से करोगे तो उससे कई गुण विकसित होंगे। ऐसे मूल रूप से कर्म तो जड़ है, परंतु उसे करते-करते हमारे में किस प्रकार की भावना रहती है तथा कर्म करने के लिए जो-जो जीवों के साथ संबंध होता है, उनके प्रति कैसा सद्भाव, प्रेम, उदारता, सहानुभूति है यह मुख्य है। **जितना ज्यादा ज्ञानपूर्वक सहन करे उतनी ही बड़ी तपश्चर्या है। इससे शुद्धि होती है। ऐसा तप हो तो प्राण की शुद्धि होती है। अनेक प्रकार की समझ के पर्दे हट जायेंगे। ऐसी भावना से बुद्धि पर रंग चढ़ेगा बाद में आपको स्पष्ट दर्शन होंगे।**

नींव हटा दो तो शांति

प्राण शुद्ध होगा, इससे मन संकल्प-विकल्प करते रुक जाता है। वैसे तो मन कभी भी निवृत्त नहीं रहता। वह कई तरह के संकल्प-विकल्प करता ही रहता है। मनोभाव प्रगट होते हैं। उसका कारण हमारे में आशा, तृष्णा, लोभ, मोह,

इत्यादि भरे हैं । वह नींव ही हट जाँय तो मन कैसे संकल्प-विकल्प करेगा । वह वैसा करता है, उसका कारण हमारे में पड़ी मनोवृत्तियाँ हैं । मनोवृत्तियाँ मन से हट जाँय तो मन को भी शांति प्राप्त होती है, यदि यह हो जाय तो समझ लो कि प्राण की शुद्धि हो गई । उसकी शुद्धि हो जाय तो मन बंदर की तरह उछलना-कूदना बंद कर दे । यह सब संयम रखने का कार्य वैसे ही नहीं होगा । उसके लिए सरल उपाय भगवान का स्मरण है । यह एक ऐसी औषधि है जो असर किये बगैर रहती नहीं है । प्राचीन समय में वैद्य हिरण्यगर्भ औषधि के जानकर थे । यह औषधि थोड़ी-सी चटा दें तो बेहोश हुआ व्यक्ति तुरंत होश में आ जाय । ऐसे दो प्रसंग मैंने देखे हैं, परंतु सामान्य व्यक्ति से यह सब नहीं हो सकता । वर्तमान में व्यवहार भी कठिन है । अब से सौ वर्ष पूर्व जीवनव्यवहार में सरलता थी । पाप कम थे, एक दूसरे के साथ व्यवहार सरल था, गरीबों के लिए प्रेम था, गरीब के घर कोई प्रसंग होता था तो जो साधन-संपन्न व्यक्ति होते थे, वे पूरा सहयोग करते थे ।

हमारी बेहोशी-अंधापना

एक राव साहब थे । किसी गरीब के घर शादी-ब्याह का प्रसंग होता तो अपनी बग्धी उसके वहाँ भेजते और स्वयं पैदल जाते यह तो मैंने स्वयं देखा है । **दूसरों के लिए प्रेम से त्यागने की भावना पहले थी, आज कम हो गई है । सिर्फ अपने स्वार्थ का ही ख्याल रखना, भले दूसरे का नुकसान हो जाय, आज ऐसी ऐसी वृत्ति विशेष दिखाई देती है ।**

मैंने अभी आपसे कहा कि वैद्यों की एक ही मात्रा से भी बेहोश व्यक्ति होश में आ जाता है । हम भी बेहोश पड़े हैं, देखते हुए

भी अंध जैसे हैं। उस बेहोशी से हमें होश में लाये ज्ञान प्रगट कराये ऐसा सरल साधन भगवान का स्मरण है। समता को योग कहा है, परंतु ऐसी समता विकसित कर सकें ऐसी स्थिति वर्तमान में नहीं है। भगवान बुद्ध लोगों का दुःख देखकर दुःखी हुए और राज्य का त्याग कर दिया। वे तो सुकोमल राजकुमार थे। फूलों की शय्या पर सोनेवाले थे, फिर भी कठिन तप करके सुखी होने के आठ मार्ग बताये, परंतु उस पर चले कौन ? बीमार है, परंतु दवाई पीने के लिए आलसी होते हैं, ऊब-ऊब कर दवाई पीते हैं। ऐसे एक नहीं किन्तु अनेक को देखता हूँ। याद रखकर दवाई पीना ऐसा भी जीव नहीं कर सकते। आप भी ध्यान देंगे तो दिखेगा कि **मोटा** जो कह रहे हैं, वह बात सच्ची है।

समता कब प्रकट होती है

हम प्रभावशाली और प्रसन्नचित्त वाले बनें। किसी के प्रभाव में न आएँ, तब साधना का सच्चा प्रारंभ होगा, और जब गंगामैया के प्रवाह की तरह दिल में भावना उत्पन्न होगी, तब हम जिसे प्राण और बुद्धि की शुद्धि कहते हैं, वह अपने-आप होती जायगी और तब मनुष्यजीवन का उपयोग क्या है वह समझ सकेंगे। ऐसे व्यक्ति का ध्येय भी नज़र के सामने ही रहा करता है। **प्राण यानी आशा, तृष्णा, काम, मोह, और लोभ का संमिश्रण। उसकी शुद्धि होगी तो बुद्धि की शुद्धि होने लगेगी। बुद्धि की शुद्धि होगी तो समता प्रकट होगी और समता प्रकट होगी तो भगवान के साथ संलग्न हो सकेंगे।**

अभी प्राण और बुद्धि की नींव जीवप्रकार की होती है, परंतु यदि वह नींव चेतना के प्रकार की हो तो प्राण, बुद्धि में धारणा टिकी रहे ध्यान में समता लक्ष्य रहे और भावना जीती-जागती रहे।

नामस्मरण क्यों ?

जिस तरह दो हिस्से हाइड्रोजन और एक हिस्सा ऑक्सीजन मिलकर पानी होता है, उसी तरह यह द्वंद्व और गुण की रचना चेतन का अनुभव करने के लिए आवश्यक है । मुंबई जाने के लिए विमान या रेलगाड़ी पकड़नी ही पड़े । लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधन तो चाहिए ही । अनुभवी व्यक्तिओं ने अलग-अलग प्रकार के साधन बताये हैं, परंतु चित्तशुद्धि नहीं हो तो विकृति हो। इसलिए शास्त्रों एवं विद्या पढ़ाने से पहले पात्रता देखते थे, वह योग्य था। लोग कहते हैं कि अनुभविओं ने दूसरों को विद्या सिखाई नहीं, इसलिए विद्या लुप्त हो गई। हम ना कहते हैं। इसलिए विद्या लुप्त नहीं हुई, परंतु अनुभविओं ने योग्यता देखे बिना ज्ञान नहीं दिया है। इससे सभी विद्या के बीज तो हैं ही। **प्राण और बुद्धि की शुद्धि हममें होती नहीं । इससे सरलता से हो सके ऐसा साधन भगवान का नामस्मरण है ।**

हल के लिए उपाय

कठिनाई, उलझन आई हो, तब उसमें उलझे नहीं रहना । इससे हल नहीं मिलेगा । दूसरी स्थिति आये । शांति प्रगट होगी तो हल अपने आप मिलेगा । इसलिए जिसमें अभिरुचि हो, उसमें मन लगाओ, भजन गाओ, प्रार्थना करो । इस तरह उलझन से दूर हो जाओगे तो हल मिलेगा । यह मेरा बताया हुआ उपाय नहीं है। वैज्ञानिकों ने भी यह हल बताया है । प्राण की शुद्धि के लिए वैज्ञानिकों-शास्त्रकारों ने अति संक्षिप्त साधन भगवान के नामस्मरण का बताया है । और किसी साधन से शुद्धि नहीं होगी, इस नामस्मरण से हो जायगी ।

कर्म से भागना नहीं, परंतु भगवान का नामस्मरण करते-करते राग, मोह, आसक्ति कम करते जाइए; स्मरण में सरलता प्रगट करो। प्रयोग तो करके देखो, संसार में **शांति से और आनंद से जी सकने के लिए और सब से अलिप्त रहने के लिए सरल से सरल साधन भगवान का नामस्मरण करना वह है ।**

दिनांक २८-२-१९६१

॥ हरि:ॐ ॥

११. संसार में सुख

हलकेपन के लिए क्या ?

अनेक लोगों को ऐसा होता है कि मनमें भगवान का नाम लेने से संसारव्यवहार में क्या लाभ होगा ? ऐसे विह्वल बनने से कोई अर्थ नहीं निकलेगा ।

परंतु हमें जिसकी गरज़ लगती है, जिसका स्वार्थ लगता है, उसमें मन सदैव लगा रहता है, ऐसा बुद्धि कबूल करती है । संसार में भी अनेक प्रकार की जिम्मेदारियाँ हैं । जीवन-निर्वाह के लिए कई चीजों की आवश्यकता पड़ती है । सब कुछ ऐसे के ऐसे पार नहीं हो जाता । इन सब में व्यक्ति जब मुश्किल में आता है, तब मन व्याकुल हो जाता है । ऐसे मन को हलका करने के लिए संसार में कोई साधन नहीं है ।

अशांति, झगड़े, संघर्षण मिटाने की कोई दवाई नहीं है । डॉक्टर शरीर की स्थूल बीमारी की दवाई देते हैं, परंतु इस प्रकार की मानसिक बीमारी को दूर करने की दवाई नहीं है । जीवन में असंतोष के कारण दु:ख, अशांति उत्पन्न होते हैं, उसमें से किस प्रकार मुक्ति पा सकते हैं ?

मानसशास्त्र के अध्ययनकर्ताओं का कहना है, 'जिसमें उलझे हुए हैं, उसमें उलझे रहने से बेहतर है दूसरे किसी विषय पर सोचना शुरू कर देना चाहिए तो उलझनवाली स्थिति हलकी हो जायगी । फिर, रुचि के अनुसार के विषय में मन लगाने से शांति और हलकापन प्राप्त होगा ।' इतना ही नहीं जो उलझन है, उसका हल भी प्राप्त होगा । यह मानने या न मानने का प्रश्न नहीं है, मन की गति बदलने की आवश्यकता है ।'

प्रार्थना

संसार में जटिल प्रश्नों के समय मनुष्य की बुद्धि काम करना बंद कर देती है । उस समय ऐसा प्रयोग हमारे लिए हित में है। कोई पूछते हैं, '' भगवान का नाम लेने से रोटी मिल जायगी क्या ?'' यद्यपि हमारे ऋषिमुनिओं ने तो इसके लिए भी प्रार्थनायें की हैं । ईसुख्रिस्त ने भी लिखा है : "Oh ! My Lord ! Give my daily bread" अच्छी बारिश हो, ऋतु अनुकूल रहे, अग्नि-सूर्य की गर्मी पर्याप्त मिले, वरुणदेव प्रसन्न रहें, ऐसी प्रार्थनायें वेदों में हैं । समय के अनुसार उस समय गायों रूपी धन के लिए प्रार्थना की । उस समय अपनी दैनिक आवश्यकता के अनुसार वस्तु की माँग मनुष्यने भगवान को प्रार्थना के रूप में की है । हम सब ने पढ़ी नहीं हैं ।

प्रार्थना कब फलित हो ?

बालक माँ के पास माँगता रहता है, पिता के पास नहीं माँगता। माँ का हृदय बालक के साथ जुड़ा हुआ होता है । जिस प्रकार बालक माँ के साथ एकरस-एकदिल होता है, वैसे हम भगवान के साथ एकदिल वाले हो जायेंगे तो हमारी माँग स्वीकार होगी ऐसा भक्तों का अनुभव है, परंतु ऐसा कब हो ? हम बालक के समान निर्दोष-रागद्वेष इत्यादि से मुक्त हों, तब भगवान हमारी माँग पूरी करेंगे ।

असल में तो माँ ही ?

ऋषिमुनिओं ने पृथ्वी, सूर्य, वायु, वरुण इत्यादि को प्रार्थना की है । आगे चलते पुरुष और प्रकृति उस तत्त्व का संशोधन

हुआ। माता की भक्ति यह अमृत देने वाली है। इससे शक्ति की पूजा का आरंभ हुआ। श्री रामकृष्ण परमहंस ने महाकाली की आराधना की। वह आराधना पत्थर की मूर्ति द्वारा की थी। विद्वानों भी उनकी वाणी सुनकर मंत्रमुग्ध-हो जाते थे। माँ की भक्ति संसारव्यवहार में उपयोग में आ सकती है। शास्त्रों ने भी कहा है, **'मातृदेवो भवः'** इसका हेतु यह है कि माता का आधार न होता तो बालक का जन्म ही न होता। **हमारे में अनेक प्रकार के दोष पैदा होते हैं, उसका कारण वे दोष हमारी माता में होते हैं। यदि उन्हें स्वतंत्रता मिले तो उनका चरित्र सुधर सकता है।**

स्त्रिओं के प्रति भाव बदलो

घर में स्त्री स्वतंत्र है, परंतु वह स्वच्छंदी नहीं होनी चाहिए। खेत को बाड़ आवश्यक है। खेत में फल उत्तम रीति से पले उसके लिए मर्यादा की आवश्यकता रहती है। हमने मर्यादा तो रखी, परंतु महिलाओं के जीवन को जकड़ रखा है। उनके जीवन को विकसने नहीं दिया। यदि हम स्त्रिओं के शरीर को खेलने का साधन मानकर बर्ताव करना छोड़ देंगे तो उनके तरफ प्रेमभक्ति उत्पन्न होगी, और स्त्रिओं के शरीर भक्ति द्वारा त्याग करने गुणों वाला बनेगा, परंतु कुएँ में न होगा तो उबारे में कहाँ से आयेगा ? वेदकाल में स्त्रिओं का सम्मान होता था। महिलाएँ धर्मचर्चा में पुरुषों को हरा देती थीं। आज भी स्त्रीसम्मान की भावना है। अभी मूल भावना के बीज जीवंत हैं। जो उन्नत रीति से जी रहे हैं, उनके लिए ही समाज का अस्तित्त्व है। यदि समाज को भावना से उन्नत बनाना हो तो माताओं के प्रति दृष्टिकोण बदलना चाहिए। महिलाओं के प्रति

आदरभाव प्रगट होना चाहिए। समाज के नवसर्जन और पुनरुत्थान के लिए यह बहुत आवश्यक है ।

हम फिर मूल बात पर आते हैं। यदि भगवान का नाम लेंगे तो वह पैसे भी देगा । यदि हमारा कोई मित्र संपन्न होगा तो आवश्यकता पड़ने पर, यदि उसके पास नहीं होगा तो किसीके पास से पाँच माँग कर भी हमें दिलाता है। किन्तु हमें उसके प्रति वैसा प्रेम हो तो । इसी प्रकार यदि भगवान के प्रति इस प्रकार का प्रेम विकसित करें तो सब कुछ हो सकेगा । अनेकों को ऐसा होता है कि यह बात गलत है । मैं आपसे कहता हूँ कि 'अक्ल से खुदा पिछानो' बुद्धि उपयोग में आती है कि नहीं ? मन, बुद्धि, प्राण, अहंकार से कमाई करते हैं। वे ज्यादा योग्य प्रकार से काम करें तो काम अच्छा हो ।

परंतु वे सब—मन, बुद्धि, प्राण, अहंकार—भगवान की भक्ति में लगे तो अधिक योग्यता से कार्य करेंगे ।

श्रीमद् राजचंद्र का उदाहरण

श्रीमद् राजचंद्र को अनुभव से लगा कि उन पर एक लाख रुपये का कर्ज है। इसलिए उन्होंने व्यापार करना प्रारंभ किया । वे जवाहरात की आढ़त का व्यापार करते थे । काठियावाड़ के व्यापारियों को माल भेजते थे। उस व्यापारी को अच्छा मुनाफा हो, इसलिए अच्छे से अच्छा माल भेजने की बड़ी लगन रखते । एक बार एक व्यापारी के साथ बड़ा सौदा किया था । फिर तो दाम बहुत बढ़े। वह व्यापारी यदि अपनी जायदाद बेच दे तो भी सौदा पूरा नहीं हो सके ऐसी स्थिति हुई । श्रीमद् राजचंद्र ने तो उसके

करार का कागज फाड़ डाला और अपने कर्ज का निपटारा कर दिया।

संसारव्यवहार अच्छी तरह चलाने की गरज-स्वार्थ हो तो भी भगवान का स्मरण करो। भगवान का नाम सफलता दिलानेवाला है। वह बुद्धि को अच्छी तरह चलाएगा। यह गप्प नहीं, अनुभव की हकीकत है। गीता में कहा है, ''मैं भक्त को बुद्धियोग देता हूँ।'' उसकी बुद्धि कहीं भी जाय सर्वोत्तम हल ला सकती है। **इसलिए सभी कर्म उत्तम प्रकार से करने के लिए उत्तम साधन भगवान का स्मरण है। मन, बुद्धि, प्राण और अहम् में उत्तमता का गुण प्रगट करना है।**

॥ हरिः ॐ ॥

१२. स्वभाव का रूपांतर

कमाई करो

यदि हम प्रेम से, सद्भाव से व्यवहार करेंगे तो हमें ही लाभ होने वाला है। कोई खीज चढ़े वैसा बोले तो क्रोध न करके समता और तटस्थता का स्वभाव विकसित करें। व्यापारी व्यापार में मौका देखता है। किसान भी बारिश होने पर खेत में से घास की निराई कर देता है। उस समय वह संपूर्ण सावधानी रखता है। कमाई कर लेनी चाहिए। ऐसा ही आदमी आगे बढ़ सकता है। कमाई करेंगे और कमाना है, ऐसा हमें भान होगा तभी हमारे में समता और तटस्थता रहेगी।

चित्त के संस्कार

शब्दों में जिस प्रकार की भावना हो, जिस प्रकार की जीववृत्ति हो, उस प्रकार के आंदोलन उठते हैं। राग के नियम अनुसार संगीत गाया जाय, उस संगीत का असर आनंद पहुँचाता है। उसी तरह हृदय की ऐसी भावना से उच्चरित शब्द भी आनंद और शांति पहुँचाते हैं। भगवान के नाम पीछे तो कई युगों से भावना रही है। चित्त में पड़े संस्कार किधर जायेंगे ? संस्कार उदय वर्तमान होंगे। यह तो मौका नहीं मिला है, वहाँ तक ऐसा लगा करे। वातावरण में फैली हुई भावना की असर प्रत्येक के चित्त पर पड़ी होती है। वह असर जायगी नहीं। कोई व्यक्ति भले ऐसा कहे कि ''मैं भगवान में मानता नहीं'' परंतु चित्त में तो संस्कार पड़े हैं, वे कहाँ जायेंगे ? जो भावनायें और वृत्तियाँ उतराई हुई हैं, उन सब का असर हमारे चित्त में पड़े बिना नहीं रहता। भगवान की भावना का भंडार भी हमारे चित्त में पड़ा हुआ है।

प्रभुस्मरण के समय अन्य विचार क्यों ?

भगवान का नामस्मरण करते समय अन्य विचार बहुत आते हैं और व्यवहार करते समय अन्य विचार नहीं आते हैं ! क्योंकि व्यवहार करते समय दूसरे को प्रसन्न करने की आवश्यकता होती है । इसलिए अन्य विचारों दबा देते हैं । किन्तु यह दलील संसारव्यवहार में क्यों नहीं उठती ? क्योंकि वहाँ तो गरज़ लगी है । इस में भी ऐसी गरज़ स्वार्थ लगेगी, इससे उन विचारों का असर नहीं होगा ।

'याहोम (समर्पित हो) करके.....'

किसी न किसी जन्म में हम टकरा गये हैं । इस जन्म में ऐसे के ऐसे नहीं मिले हैं । इसलिए आपको कहता हूँ, ''याहोम करके आगे बढ़ो फतह है आगे । यद्यपि यह बात तो कवि नर्मद ने अपनी टेक परे टिके रहने के लिए की थी । मैं कुछ त्याग करने नहीं कहता । प्राप्त धर्म का उत्तम प्रकार से पालन करना चाहिए । वैसा नहीं करते हैं, तब तो अफसोस होता है । भगवान के नाम में तो अपूर्व शक्ति की आवश्यकता है । ऐसे खमीर के दर्शन मुझे किसी भी प्रवृत्ति में होते हैं, तब ऐसा लगता है कि यह व्यक्ति कुछ कर सकेगा । जीवननिर्वाह की प्रवृत्ति करो तो भी उत्तम प्रकार से करो । अपने हिस्से में आया कर्म संपूर्ण प्रकार से करो । प्राप्त प्रवृत्ति में भी असावधानी से बरत रहे हो, उसका भी भान नहीं होता है । पीढ़ी के लिए लेखन प्रवृत्ति का कार्य आये तो इतनी सुंदर रीति से लिखें कि उसका असर हो । **उल्टी खोपड़ी का हो तो उसके साथ भी सुमेल रखने की प्रेमवृत्ति रखोगे तो भगवान सब करेंगे ।**

जहर पीओ तो प्रेम से

इस संसार में शांति से रहना हो तो खमीर से जीओ । कोई दूसरे के दोष बताता है, यह मुझे पसंद नहीं । संसार में अमृत और

ज़हर दोनों मिलेंगे । ज़हर प्रेम से पीया करो । कलह, संघर्षण, दुःख-यह सब ज़हर सभी को पीने तो पड़ते ही हैं, तो फिर उसे प्रेम से और उल्लास से करोगे तो शक्ति बढ़ेगी । यह संसार फालतू नहीं बना है । **गुणों की शक्ति को विकसित करने के लिए हम यहाँ आये हैं । इसके लिए यह संसार हमें मिला है । दूसरे ऐसा करते हैं या नहीं यह बात छोड़ दो । हम तो प्रेम से, उमंग से और आनंद से जीया करें ।**

एक दूसरे के लिए छोड़ना भी पड़ता है, उससे कोई बच नहीं सकता, लेकिन ऐसा बलपूर्वक करने से काम बिगड़ता है और अकल्याण होता है । इसलिए प्रेम से करो तो शांति बढ़ेगी और ज्ञानतंतु मजबूत बनेंगे । इसके साथ भगवान का नामस्मरण करोगे तो समता प्रकट होगी । असुविधा, उलझन, कठिनाई, समस्या से अलिप्त रहने की एक शक्ति उत्पन्न होगी । संसार के अनेक कर्मों में से मुक्ति प्राप्त करने के लिए यह उत्तम उपाय है ।

प्रयोगवीर बनो

भगवान का नाम लेते कोई मज़ाक करे तो करने दो। यदि भगवान का नाम लेने में साहस या हिम्मत नहीं है, तो दूसरा क्या करोगे ? मस्ती से भगवान का नाम ललकारो । दूसरे भले हँसे । उसके बाद की खुमारी देखो । यह तो करके देखने का प्रयोग है। प्रयोग किये बिना नहीं समझ सकोगे । जो प्रयोगवीर है, वही प्रयोग कर सकता है ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को जीतना वह युद्ध के योद्धा से भी विशेष पराक्रमी का काम है । जिसे जीती जागती तमन्ना उत्पन्न होगी वही यह कर सकता है ।

सद्भाव-साधना

जो व्यक्ति स्वयं के स्वभाव को-प्रकृति को ठीक से पहचान सकता है, वही दूसरे के स्वभाव-प्रकृति को पहचान सकेगा ।

भगवान का नाम लेने वाले को दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, वह अच्छी तरह समझ में आता है। भगवान का नाम लेने वाले को नम्र बनना पड़ता है। बिना नम्रता के संसार में नहीं चलता; अन्यथा हमारा ही स्वार्थ पूरा नहीं होगा। जो जीव मिले हुए हैं, उनके साथ सद्भाव से वर्तन करेंगे तो हम हमारा अच्छा प्राप्त कर सकेंगे। यदि हमें जीवन में मिली प्रवृत्ति को शोभित करनी हो, योग्य रीति से वफादार और प्रामाणिक रहना हो तो उस प्रवृत्ति के लिए जिन-जिन व्यक्तिओं का साथ मिलना होता है, उन सब के साथ सद्भाव और अच्छे मेल से व्यवहार करेंगे तो हमें फायदा होता है। इसके कारण हमारा खमीर बढ़ेगा। यह भी एक साधना ही है। सिर्फ नाक दबाकर या आँखें बंदकर बैठना वह ही साधना नहीं है, उसका कोई अर्थ भी नहीं है। इसलिए मंथर गति से चलती बैलगाड़ी की तरह मत चलिए।

प्रकृति के फेरफार के लिए साधना

रजोगुण में तो चढ़ती-पड़ती होती रहती है। रजोगुण से प्रेरित होकर कार्य करने से अनंत जन्मों तक कुछ भी प्राप्त नहीं होता। शांति से भगवान का नाम ले सकूं इसलिए मैं एकांत तलाश करके बैठता। मेरे गुरुमहाराज के आशीर्वाद से पानी के सहारे ही बैठता था। चार-पाँच दिन बाद भोजन मिलता था। इस निमित्त से भूख-प्यास पर काबू पाने के उत्तम मौके मिले हैं। **मैं रोज़ा भी करता था। परंतु उसके पीछे हिन्दू-मुसलमान की एकता की भावना नहीं थी, परंतु साधना की भावना थी।** रोज़े के दरमियान कम से कम खाता और थूक भी गले से नीचे नहीं जाने देता था। पूरा दिन प्रार्थना करना यही नियम होता था। ऐसे उत्तम मौके के कारण भगवान की कृपा उतरी। अब आपको बताया हुआ कार्य यदि प्रेम से करोगे तो उसका लाभ—प्रकृति का फेरफार—

यह बात निश्चित है । योग्य कार्य, हेतु के ज्ञानभान के साथ करोगे तो ही समाज की सेवा कर सकोगे । सेवा करने को मना नहीं कर रहा हूँ , परंतु हकीकत में उसकी प्रेरणा ही नहीं हुई है । इस मार्ग में तो कण से भी कण होना, शून्य से भी शून्य होना है । ऐसा बोलना सरल है, परंतु उस के अनुसार आचरण करना कठिन है ।

''भगवान का डाकिया हूँ''

मैं प्राकृत व्यक्ति की तरह व्यवहार करता हूँ, उसका कारण या हेतु आप नहीं समझ पायेंगे । मेरे व्यवहार के बारे में मत सोचो । मेरा उदाहरण लेने से आपका कोई फायदा नहीं होगा । इसलिए मैं जो कहता हूँ उसे समझो और उसके अनुसार करोगे तो अवश्य लाभ होगा । इस रीति से आचरण करोगे तो हमारा मिलना सार्थक होगा । मेरे गुरुमहाराज ने हुक्म किया था, 'जिसके साथ प्रारब्धकर्म संलग्न हो उसे ही सच्ची बात कह सकते हैं ।' अनेक लोग आगे बढ़ने की बात करते नहीं और स्वार्थ की बातें करते हैं । मैंने तो आपके स्वार्थ की ही बात की है । स्वार्थ दिखाने पर भी भक्ति बढ़ती नहीं है । भगवान ने कृपा करके मुझे उसका साधन बनाया है । जैसे उतराण ग्रीड में से बिजली बहुत जाती है, परंतु उसका स्टेशन यहाँ बनाया है, ऐसे मैं भगवान का स्टेशन हूँ । उसका डाकिया हूँ । **जिसके द्वारा काम हुआ हो, उसके प्रति भक्ति जागृत होनी चाहिए ।** यदि तीव्र भाव जागृत न हो तो मैं क्या कहूँ ? आप सब को यह भान जागृत हो ऐसी प्रार्थना है ।

दिनांक : ११-४-१९६१

॥ हरिः ॐ ॥

१३. अंत समय आये तब

सब कुछ नियम से

किसीने पूछा कि ''हमारे शास्त्रों में कहा है कि मृत्यु के समय भगवान का नाम लें तो उसका कल्याण हो, परंतु पूरी जिंदगी लस्टम-पस्टम जीने के बाद मृत्यु के समय ही भगवान का नाम लेने से उसका कल्याण कैसे होगा ?''

मैंने कहा कि हमारे में बुद्धि तो है तो सोचो । मूल आकाशतत्त्व था । उसमें क्षोभ होते वायु प्रगट हुआ । उसी तरह अग्नि, जल, पृथ्वी इत्यादि हुए । ब्रह्मांड में कितने ही गोले हैं । पानी भी H_2O की रचना से होता है । सृष्टि में और ब्रह्मांड में सब भगवान के नियम से बनता है । यह नियम कौन-सा ?

सूक्ष्म प्रबल संस्कार

मनुष्य की मृत्यु के समय स्थूल शरीर की प्रत्येक नस अलग हो जाती है । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् इस स्थूल के साथ संलग्न हैं । स्थूल की चेतना (Consciousness) उसके अस्तित्व मिटने के अंत की तैयारी के समय सूक्ष्म करण अलग हो जाते हैं । उस समय सूक्ष्म शरीर आगे होता है । स्थूल शरीर की पकड़ नहीं रहती । जो सूक्ष्म शरीर हैं, वह भगवान का नाम लेता है । उस नामस्मरण के संस्कार इतने प्रबल शक्तिशाली होते हैं कि उसके कारण एक प्रकार की अनुकूलता वाला शरीर प्राप्त होता है ।

सूक्ष्म संस्कारों की प्रबलता

पृथ्वी पर सूक्ष्म प्रकार का वातावरण है और सूक्ष्म में अनेक घटनाओं का सर्जन होता है । स्थूल शरीर के गढ़न का आधार

सूक्ष्म शरीर है । सूक्ष्म आगे प्रगट होने से सूक्ष्म के संस्कार इतने प्रबल होते हैं कि उसके अनुसार शरीर धारण करने की संभावना बढ़ जाती है । मृत्यु के समय सात्त्विक प्रकार की भावना प्रगट हुई, तो उस प्रकार का ही जन्म लेने की संभावना होती है, परंतु वैसी भावना धारण करने की आदत हो तो ही ऐसा बने न ?

'जागते नर का संग करें'

सगेसंबंधिओं के साथ कर्मव्यवहार करते समय मन, बुद्धि, चित्त प्राण, में अनेक प्रकार के मनोभावों के कारण सूझ उदित नहीं हो पाती है । यदि अभ्यास पड़ा हो तो उस समय ऐसी सूझ उदित हो । परंतु इसमें तो अभ्यास हो तो भी ऐसी भावनात्मक प्रकार की मनोवृत्ति का प्रागट्य कठिन है । ऋषिमुनिओं को भी मृत्यु के समय इदं तृतीयम् संसारी वृत्ति का मनोभाव जागृत होता है; परंतु यदि जीतेजागते नर (जीवनमुक्त) के साथ संपर्क रखेंगे और यदि भगवान की कृपा हो तो मृत्यु के समय भावना प्रकट होती है । ऐसा हो तो सूक्ष्म में वैसी भावना प्रगट होगी और हमारा अनुकूल जन्म होता है; अन्यथा कर्म से छूट नहीं सकते ।

सूक्ष्म की शक्ति

सूक्ष्म शरीर यदि हमारे में काम करता हो जाय तो हमारे में सद्भावना प्रगट हो सकती है । सूक्ष्म शरीर की रचना अलग प्रकार की होती है । आकाश और तेज, किसी में वायु का प्रमाण भी हो । उच्च भावना वाले का आकाशतत्त्व; उससे निम्न भावना वाले के सूक्ष्म शरीर आकाश और तेज तत्त्व का; इससे निम्न में वायु मिश्रित हो । फिर तो अनेक प्रकार के पर्मिटेशन-कोम्बीनेशन से सूक्ष्म शरीर बनते हैं । आकाश का अनुसंधान शब्द के साथ; आकाश का

प्रागट्य शब्द में और तेज का रूप में, वायु का स्पर्श में । अब यदि शब्द का अभ्यास सतत चलता रहे तो हमारा सूक्ष्म शरीर अग्र में रहकर कार्य करेगा । बड़ी पीढ़ी करोडों की हो, मुनीम इत्यादि कार्य करते हैं, आफत आये तो मालिक आते हैं । स्थूल शरीर में यदि सूक्ष्म शरीर आगे रहे तो कई काम हो जाँय ।

सूक्ष्म द्वारा सर्जन

वायु से घर का छप्पर उड़ सकता है, परंतु टेकरी नहीं उड़ जाती । स्थूल शरीर तो द्वंद्व और गुण का बना हुआ है । अनेक प्रकार के द्वंद्व में पिसता है । नीति-अनीति, प्रकाश-अंधकार, सुख-दुःख जैसे अनेक विरोधाभासी द्वंद्वों के बीच में शरीर पिसता जाता है । फिर मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् शरीर के साथ एकरूप हो गये होते हैं । इसलिए जो भी आवेग उठते हैं, उनका असर शरीर पर होता है । जब कि सूक्ष्म शरीर तो तीन तत्त्वों- आकाश-तेज-वायु का बना हुआ है । वायु तो अत्यंत निम्न कोटि के जीवों में आगे होता है । वायु का स्पर्श से अनुभव होता है, तेज को देख सकते हैं, जबकि आकाश तो निराकार, व्यापक और गहन ।

यों

आकाश - शब्द

तेज - रूप

वायु - स्पर्श

तेज-रूप-वह साधारण रूप नहीं, उसमें भी लालसा होती है । शायद ही कोई महात्मा उससे दूर रह सकते हैं । हमारे जैसे तो फँस जायेंगे । भगवान को रूप जैसा कुछ नहीं है । उसे तो मन समक्ष ला ही कैसे सकते ? मन रूप की बात नहीं समझता । रूप

तो विचार द्वारा कल्पित किया है । रूप के लिए अनेक देवदेविओं की कल्पना सर्जन की । फिर शब्द तो था ही । ऐसे शब्द और रूप के बारे में सोचने से आकाश और तेज से सूक्ष्म शरीर अग्रिम होता है । अब रूप में विविधता अवश्य है, विविधता द्वारा फैलाव होता है, परंतु जैसे मनुष्य एक, परंतु उसके रूप विविध-वैसे इस विविधता और विस्तार में एकत्व रहता है । **विविधता और विस्तार आकाश और तेज तत्त्व के कारण है एवं रूप और वायु के कारण विविधता है ।** इसलिए किसी रूप को मन समक्ष रखने से सात्त्विक भूमिका प्रगट होती है, परंतु जिस प्रकार के रूप से हमारा मन फँस जाय वैसा रूप नहीं होना चाहिए, इसलिए हमारे ऋषिमुनिओं ने स्त्री-पुरुषों में सात्त्विक भावना विकसित करने हेतु देवदेविओं के रूप सामने रखे ।

सिर्फ भावनात्मक शब्द का मनन-चिंतन करो सही, परंतु रूप के बिना मन तद्रूप नहीं होता । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् को रूप चाहिए । इसलिए मनोरम्य सृष्टि का निर्माण हुआ-ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे देवों की सृष्टि निर्माण हुई, परंतु ये देव प्रत्यक्ष नहीं हैं । संसार में अनेक प्रकार की उलझनें, कठिनाइयाँ आ पड़ें तब कोई प्रत्यक्ष बोलता नहीं । नरसिंह या मीरां भले मूर्ति के साथ बात कर लें, हमारे लिए यह दूर की बात है । इसलिए ऋषिमुनिओं ने आगे सोचा । उसमें से सद्गुरु की प्रथा निकली ।

गुरु के साथ बात

प्रत्येक क्षेत्र में किसी के पास सीखना पड़ता है । हमारा दिल जिसमें विशेष उसके प्रति हम प्रेमभक्ति अनुभव करते हैं, वहाँ दिल खोलते हैं । मित्र हमारी तकलीफें दूर नहीं कर सकता है, परंतु उससे बात करने से हलकापन प्रगट होता है । उसमें प्रेम की भावना

होने से हम गद्‌गद होते हैं, तो फिर गुरु के साथ बात करने पर हलके हो सकते हैं । वे ऊर्ध्वगामी होने के कारण रास्ता भी बता सकते हैं । गड्‌ढे में से बैलगाड़ी बाहर निकाले उनका ऐसा अभ्यास होता है । इसलिए गुरु की प्रथा शुरू हुई थी । हम सब संसारी जीव रहे । अनेक प्रकार की उलझनें, कठिनाइयाँ पैदा हों, उनमें से हलकापन हो, इसलिए कुछ उपाय खोजने से गुरु की प्रथा का प्रारंभ हुआ ।

उपनिषद

हमारे में पुरुष और प्रकृति दोनों है, परंतु प्रकृति अग्रिम है और पुरुष सुषुप्त है । जब पाँचों करणों में मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् में लगातार भावना जागृत हो, तब पुरुष जागृत होगा । ऐसा होगा तभी स्थूल में होते हुए भी स्थूल से अतीत बरत सकेंगे । हमारे ऋषिओं ने अनुभव करके शास्त्रों की रचना की । उपनिषद यह अनुभव का शास्त्र है । **उपनिषद अर्थात् तत्त्व के—चेतन के पास बैठना—यानी कि उसकी भक्ति में तन्मय होना ।** हमारे में जो पुरुष सुषुप्त है, उसे जगाना हो तो शब्द, स्पर्श और रूप को अग्रिम लाना पड़ेगा । ऐसा होगा तो प्रकृति पृष्ठभूमि में जायगी । असल बात यह है कि मृत्यु के समय यदि भगवान की भावना जागृत हो तो आकाशतत्त्व अग्रिम रहेगा । सूक्ष्म शरीर को अग्रिम करना हो तो भगवान की विशिष्ट प्रकार की भावनायुक्त भगवान के स्मरण की असर की खास आवश्यकता है ।

मेरे गुरुमहाराज ने कहा है कि बिलकुल सच बात करना । नडियाद में मेरे एक मित्र थे । संसार में व्यस्त रहते थे और अनेक

प्रकार की लालसा, वाले थे। अति धनवान थे। लग्न किया किन्तु संतान नहीं हुई। इसलिए पुत्रेष्ठियाग करने वाले थे। मैंने कहा, ''धन खर्च न हो ऐसा यज्ञ करना''। मेरे समागम में आये थे। प्रभुकृपा से अठारह घंटे भगवान का नाम लिया। मेरी सेवा भी करते थे। चेतनानिष्ठ व्यक्ति की सेवा कभी मिथ्या नहीं जाती, परंतु ऐसी सेवा अपने स्वयं के कल्याण के हेतु से करना। मैं किसी के उपकार में रहा नहीं। मेरे मित्र के घर पर प्रभुकृपा से अच्छे दिन आये थे, परंतु उन्होंने शर्तों का पालन नहीं किया।

आप धन देते हैं या मेरी सेवा करते हैं, ऐसा गुमान नहीं रखना। मैंने बीस साल तक निष्काम सेवा की है। मैं यदि चाहता तो आपसे ज्यादा धन कमा सकता था, परंतु मेरा वह ध्येय नहीं था। फिर धन का गुमान अच्छा नहीं है। बँटवारा होने पर धनवानों का गुमान चूर-चूर हो गया। बर्मा में जापान आया तब वैसा ही हुआ। मलाया में सिक्के निकाले, परंतु वह राज्य गया। इससे पैसे पानी में। **इसलिए पैसे से सेवा का गुमान मिथ्या है। धन कमाने की कुशलता, सयानापन न रखें, या बुद्धि की खुमारी मत रखो, किन्तु नम्र रहोगे, तभी लाभ होगा।**

आश्रमयोग

इस सूरत शहर में मुझे कोई पहचानता नहीं था, परंतु मुझे विश्वास था। क्योंकि मुझे पता है कि मेरा संबंध किसके साथ है। समुद्र में अनेक नदियाँ मिलती हैं। वह किसी को कहने नहीं जाता। प्रारब्ध भोगना है, इससे जिन-जिन के साथ संबंध है, वे सब मुझे मिलते हैं। मेरे गुरुमहाराज ने उसके लिए योग करा दिया है। इससे यह आश्रम है।

तुम्हारा कल्याण देखो

इस आश्रम का पाँच सौ - सात सौ का मासिक खर्च पाँच-छ महीने तक लगातार एक ही व्यक्ति ने उठाया, परंतु हमारा काम एक ही व्यक्ति के पास से लेने का नहीं है। हमें तो अलग-अलग परिवारों से लेना है। **भंगी अनेक स्थान से माँगता है। यह बोलता हूँ, वह तो तुम्हारे में से उठे हुए विचारों का प्रतिबिंब है। आप करते हो, वह मेरे लिए नहीं करते हो, परंतु आप के हित के लिए करते हो, ऐसी भावना से करना।** गुरुमहाराज ने मुझे अलग आदेश दिया है। भगवान हमारे पर कोई कर्ज रखने नहीं देता। **हमारे लिए जिस जिसने भी काम किया है, उसे वह दिये बिना रहता नहीं। परंतु यह तो कइओं को ऐसे विचार आये इसलिए मैं साफ कहता हूँ।**

दिनांक १६-५-१९६१

॥ हरि:ॐ ॥

१४. ''कर ले श्रृंगार''

विवाह का आदर्श

आज ऐसे प्रकार का योग है कि पति-पत्नी दोनों मौन में बैठने वाले हैं। फिर उनका विवाह भी अत्यंत सादगी से यहीं होने वाला है। विवाह का आदर्श आप सब को समझाने का दिल है। हम संसार में विवाह से जुड़ते हैं, उसका महत्त्व-उस बारे में सच्चा ज्ञान हमें माता-पिता, किसी शिक्षक या किसी महात्मा के पास से प्राप्त नहीं होता है। विवाह का आदर्श समझ सकें, इसलिए यह चौदह श्लोक पढ़कर सुनाता हूँ :

(अनुष्टुप)

उपस्थिति में बुजुर्गों की प्रतिज्ञा लेते हैं हम,
यज्ञ यह जिंदगी का साथ में आचरेंगे हम... १
मूल्य जिंदगी का अनोखा जानकर जीवन में,
यज्ञ की भावना से साथ चलते रहेंगे हम... २
आहुति वृत्तियों की पथ में समर्पित करते हुए,
संयम से जीवनपुष्प को विकसित करेंगे प्रेम से... ३
व्रत यह जिंदगी का सरल नहीं है निभाना,
वह जानकर आज जुड़ रहे हैं हम... ४
प्रेम भोगते हुए भाव उड़ जाता है,
त्याग-समर्पण से ही प्रेम क्या विकसता है... ५
प्रेम के भाव का ज्ञान विकसित करके हृदय में,
प्यार से उड़ेंगे हम दोनों जीवन में... ६

मित्रता स्फुरती है सात कदम साथ चलने से,
जीवन की भूमिका में दोनों बरतेंगे वैसे... ७
भोग भोगने के लिए, जिंदगी का मूल्य क्या ?
जिंदगी है तप के लिए, भाव से एक बनेंगे... ८
गुलाब का निरा सौंदर्य नहीं भरा जीवन में,
काँटे भी हैं साथ में जानकर जुड़ रहे हम हृदय से । ९
सुख-दुःख और हर्ष-शोक की वृत्तियाँ,
सहकर समभाव से मिलते हैं, आज जीवन में... १०
मिटाकर स्वयं को भी, देंगे महत्त्व साथी को,
इसी भावना से प्रेरित जुड़ रहे हैं परस्पर में... ११
भोगना जानता नहीं, देना जानता प्रेम चाहकर,
इसी भावना को विकसित करने जुड़ते हैं हम... १२
जिंदगी के आनंद से भीगेंगे ही भाव से;
दूसरे को स्पर्श कर ने हेतु दोनों एक तो बनते... १३
तलसते दिल-भाव से आज दोनों हम पथ पर,
सही जिंदगी पाने के लिए एक तो बनते सही... १४

साजन के घर कैसे होकर जाएँगे?

मधुरीबहन खरे ने अभी भजन गाया कि
''कर ले शृंगार चतुर अलबेली,
साजन के घर जाना...'
हमें भी साजन के घर जाने के लिए शृंगार सजना है । ''चतुर अलबेली'' का संबोधन हमारे लिए है । भगवान हमारा साजन है ।

उसके घर मैले कुचैले जायेंगे यह नहीं चलेगा । इसमें शरीर की बात नहीं है, परंतु अंदर बसे हुए अमर तत्त्व की बात है । हम जीवप्रकार की वृत्तिओं से मैले कुचैले रहें और ऐसे ही रूप में साजन के घर जाँय तो यह कैसे चलेगा ? इसलिए कहता हूँ कि **मनुष्य की जिंदगी सिर्फ भोग-विलास के लिए नहीं है, परंतु उच्च प्रकार की भावना प्रगट करने के लिए है ।**

सब के ऋणी

हमारे ऊपर अनेक प्रकार के ऋण होते हैं । इसलिए हम सुखी हों और दूसरों को सुखी करें । हम अकेले होते हुए भी समाज के साथ जुड़े हुए हैं । **हमारे द्वारा समाज उन्नत हो, ऐसा हम करें तो वह भी भगवान की भक्ति है ।** किन्तु हमारे में भावना, खमीर और गुणशक्ति, प्रगट हो, तब समाज उन्नत होता है । हमारे रागद्वेष फीके हुए बिना, अंतर के मैल की शुद्धि हुए बिना, हमारी या समाज की उत्तम सेवा नहीं हो सकती । ऊर्ध्व प्रकार की भावना अनुसार जीवन का ध्येय-आदर्श अनुसार व्यक्त होने की कला प्राप्त करे ऐसा जीव स्वयं की और समाज की सेवा कर सकेगा । इसलिए एकदूसरे के प्रति जितना अधिक सहानुभूति से-प्रेम से रहने का करें तो यह भी एक प्रकार की सेवा है । लोग दूसरे के बारे में बातें करते हैं, परंतु स्वयं में दोष हैं, खामी है, उस बारे में अभी तक कोई मेरे साथ बात नहीं करते । **हमारा कुछ भी दूसरे को चुभे नहीं उस प्रकार जीना सीखो ।**

प्रभुकृपा का अवतरण

हमें दो प्रकार के प्रयत्न करने हैं । एक, ऊपर उठने का प्रयत्न जो हमें स्वयं ही करना है । दूसरा, भगवान की कृपा का

अवतरण करने का और वह अवतरण कब हो ? हमारे में सच्चाईपूर्वक, भक्तिभाव से और प्रामाणिकता से जीवन जीने की भावना प्रगट हो तो भगवान की कृपा का अवतरण हुए बिना नहीं रहेगा । भगवान के नामस्मरण में अद्‌भुत शक्ति है, उस विषय में मेरे मन में कोई संशय नहीं है । यह हकीकत समझा सके ऐसा भी है । हम गुस्से से, दया से, मनोभाव से-जैसे भाव से शब्द का उच्चारण करते हैं, उसी प्रकार के भाव-आंदोलन वह शब्द सुनने वाले व्यक्ति में उत्पन्न होते हैं । गांधीजी के समय में गायों को भी 'गंगा' ''जमुना'' ऐसे नामों से बुलाते । गायों में से भी उसी नाम की गाय आती। पशु भी एक ही प्रकार के शब्द-आंदोलन से आदी हो जाते हैं । भावयुक्त शब्दों की असर पशु को भी होती है । हम शब्द की भावना का प्रेमभक्तिपूर्वक स्वीकार नहीं कर सकते हैं । मनुष्य के हृदय में उसका भान जागता नहीं। योग्य प्रकार का भाव जागता नहीं ।

'कमरअली दरवेश'

पूना से पंचगिनी जानेवाले मार्ग पर कमरअली नाम के दो पत्थर हैं, उसमें मंत्र की शक्ति है । एक पत्थर छ मन (१२० किलोग्राम) का है और दूसरा पत्थर चार मन (८० किलोग्राम) का है । यों ये पत्थर आसानी से नहीं उठा सकते हैं । ''कमरअली दरवेश'' नाम के मंत्र की शक्ति उस पत्थर में डाली गई है । छोटा पत्थर नौ व्यक्ति सिर्फ उँगली लगाकर ''कमरअली दरवेश'' बोलें तो वह पत्थर उठाया जा सकता है । उस शब्द का उच्चारण चलता रहे, तब तक पत्थर उठा हुआ रहता, परंतु जब किसी का भी उच्चारण रुक गया तो पत्थर उसके पास गिर पड़े । बड़ा पत्थर ग्यारह व्यक्तिओं द्वारा उँगली लगाने से उठाया जा सकता है । ऐसा

करने में ''कमरअली दरवेश'' का उच्चारण ही काम आता है और वैसा करने के लिए सभी पुरुष ही होने चाहिए । महिला हो तो नहीं उठा सकते । मधुरीबहन खरे ने उसका रहस्य बताया कि पुरुषों के आवाज की ''पिच'' ऊँची होती है । कमरअली दरवेश की तरह 'हाई पिच' से आंदोलन रखे होंगे । फिर इस में ८ या १० पुरुष नहीं सिर्फ ९ पुरुष ही चाहिए । इसका प्रयोग कितने भी व्यक्तिओं का समूह कर सकता है । शब्दों के आंदलनों में कितनी शक्ति है, उसकी यह हकीकत का प्रमाण है । शब्द की शक्ति से ऐसा पत्थर उठता है तो मनुष्यशरीर में शक्ति क्यों नहीं प्रगट होगी ? परंतु हमारे में सहकार की भूमिका प्रगट नहीं हुई है । सांसारिक वृत्तिओं के कारण संघर्षण प्रगट होता है, इसलिए शब्द को असर उद्‌भवित नहीं होता ।

नामस्मरण का भेस (संकल्प)

संसार में रहें, इससे क्लेश, उपाधि तो रहेंगे ही । हमें लगता है कि भगवान का नाम लेने से क्या होगा ? ज्ञानी, अनुभवी महात्मा कह गये हैं कि ''क्लेश, उपाधि, भले रहे - संघर्षण भले रहे, परंतु आप उसके नाम का भेस अखंड, रीति से, लगातार करके देखो । खीर या लड्डू को चखे बिना उसका स्वाद नहीं जाना जा सकता है । भगवान का नाम इस तरह लेना चाहिए कि हमारा श्वासोच्छ्‌वास और रक्त का भ्रमण होता है, उसी गति से नामस्मरण चले । भगवान के नाम की भावना चलती रहेगी तो वृत्तिओं का ऊर्ध्वगमन हुआ करेगा; लगातार बारह-चौदह घंटा चलेगा तब मन की प्रवृत्तिओं में हलकापन अवश्य अनुभव करोगे । साथ ही सद्‌वाचन-सद्‌भाव का अभ्यास संलग्न कर सकते हैं । भले कोई भी काम करते हुए भी

प्रत्येक पाँच मिनट में सद्गुरु की धारणा करके स्मरण करोगे तो हलकापन प्रकट होगा । आप को जो काम की गरज होती है, वह काम आप किया करते हो । लोग क्या कहेंगे उसकी परवाह नहीं करते । तो फिर प्रियतम भगवान को रिझाना होगा तो उसका नामस्मरण करना पड़ेगा । और उसके पीछे हमारी भावना सच्ची होगी तो हम सच्ची रीति से प्रगट हो पाएँगे ।

स्व-सेवा बाद में समाज-सेवा

हम समाज की सेवा करने की बातें करते हैं, परंतु लोगों की सेवा करने जैसी हमारी स्थिति नहीं है । हम जैसी वृत्ति से समाज में जाँये वैसा पुट लोगों को लगेगा । ईश्वर की कृपा से बीस साल तक समाजसेवा की है; परंतु गुरुमहाराज ने समझाया था कि ''लोगों की सेवा करते-करते तुम अपनी सेवा करो । भगवान की भक्ति करके उसका माध्यम बन जा; बाद में ही तुम सच्ची सेवा कर सकोगे ।'' हम हमारे में रही वृत्तिओं को देखें और बाद में सोचेंगे तो समझ पायेंगे कि पहले यही कार्य करने जैसा है । भगवान का माध्यम बने बिना समाज की सेवा करने से तो हमारी जीवनकक्षा निम्न बनाते हैं । समाज को मैला करते हैं ।

तो सब मिथ्या

हमने जन्म लिया है, क्योंकि हमारे ऊपर अनेक प्रकार के ऋण हैं । समाज का भी ऋण है । यहाँ आने वाले भगवान का नामस्मरण करें, उतना ही नहीं किन्तु जीवन को उन्नत मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न भी करें । प्रतिदिन एक घंटा अच्छा कार्य किये बिना सोना नहीं । प्रतिदिन भगवान का नाम लें, सद्वाचन और सत्संग किया

करें और जीवप्रकार की वृत्तिओं को फीकी करते जाँय। दो भाइयों के बीच बनता नहीं तो मनुष्यजीवन का मूल्य क्या ? हम क्या समझें ? हम जो बोलते हैं, उसका रहस्य उदित न होगा तो यह प्रवृत्ति मिथ्या है ।

महात्मा गांधी का उदाहरण

महात्मा गांधीजी की बात है । उनके पास माला सतत रहती थी । चाचाजी (गुरुदयाल मल्लिकजी) कहते थे कि रात को बापू जब नींद में हो और उनके शरीर पर हाथ रखें तो 'राम' की ध्वनि सुनाई देती । मैंने देखा नहीं, परंतु यदि तेल की धार लगातार गिरती रहती है, उस तरह स्मरण लगातार होता रहे तो ऐसा हो ऐसा समझता हूँ, मानता हूँ और अनुभव भी कर सकता हूँ । गांधीजी ने प्रत्येक कार्य भगवान की प्रेरणा से किये । दांडीकूच की । लाहोर की महासभा में स्वराज्य लेने का निश्चय हुआ, परंतु आंदोलन कौन चलाये ? वहाँ तय हुआ कि महात्मा गांधी कहें वैसा करना है। उसके बाद साबरमती आश्रम में एक महीने तक रहकर प्रसव की वेदना अनुभव की । यह तो समाचारपत्र में आयी हकीकत है । इस वेदना में से नमक सत्याग्रह सूझा । लोग तो हँसते, परंतु उस समय जिन्होंने प्रत्यक्ष देखा है और इस घटना के जो गवाह हैं, उन्हें पता है कि गांधीजी में कितना बल था । १९४२ की ९ अगस्त को ''हिंद छोड़ो'' की भावना से आंदोलन शुरू हुआ । उस आंदोलन से अंग्रेज हठे ।

महात्मा का संकल्प और अन्यों का सहकार

कोई महात्मा महाभारत-संकल्प करे, तो वह मिथ्या नहीं होता। गांधीजी का संकल्प महान था, परंतु उस संकल्प की पूर्ति करने

वाले हम मैले-कुचेले थे। परिणाम स्वरूप गांधीजी चाहते थे, उस प्रकार के स्वराज्य के दर्शन नहीं हुए, इसलिए जिंदगी के अंतिम दिनों में वे प्रार्थना करते थे, ''यह सब अब देखा नहीं जा रहा है।''

''चावल नहीं रखे''

इस तरह महात्मा के संकल्प को पकड़ने वाले हम यदि योग्य न हों फिर भी उनका संकल्प तो पूरा होगा, परंतु इच्छित परिणाम नहीं आयगा। हम किसी महात्मा के साथ जुड़े हों फिर भी संकल्प पूर्ण नहीं होता, उसके कारणरूप हम हैं। मेरे पास आये हुए और आश्रम में रहने वाले तरह-तरह की तरंगें उठाते हैं। **मैं किसी को चावल रखने (बुलाने) नहीं गया हूँ। अनुकूल न आता हो तो मत आना, परंतु आओ, तब सहकार वाला मन लेकर आना।**

स्मरण के साथ सभानता

स्मरण से भावना का बल प्रगट होता है। घंटे-दो घंटे नामस्मरण करने से भी भावना कोमल रहेगी। भावना के संस्कार चित्त पर पड़े बिना नहीं रहते। चित्त तो खुले हुए कैमरे के समान है। जो उसके सामने आये उसका उसमें चित्र बन जाता है। भगवान के स्मरण को यदि अखंडाकार बनायें तो उस प्रकार की वृत्तियाँ प्रगट होंगी। फिर उसके साथ-साथ हमारे रागद्वेष किस तरह फीके पड़ें उसका यदि जीवंत भान रखो तो भगवान की कृपा का अवतरण होगा। जहाँ तक हमारे में ऊर्ध्व में जाने की वृत्तियाँ प्रगट नहीं होंगी, वहाँ तक कुछ प्राप्त नहीं होगा।

आवश्यकता-अदम्य उत्साह की

नामदेव, तुकाराम, रामदास, नरसिंह मेहता इत्यादि को भगवान के भाव की वृत्तियाँ थीं। उनके बालक भी थे। परंतु उन्होंने अपना हृदय और अहम् भगवान में लगा दिया था और उन्होंने स्वयं के

लिए ऊर्ध्वगति प्राप्त करने का साधन पकड़ लिया था । एकलव्य को देखो, वह भील था । धनुष्यविद्या सीखनी थी । द्रोणाचार्य के पास गया । उन्होंने सिखाने की ना कही और कहा कि ''धनुर्विद्या क्षत्रिय के सिवा अन्य को नहीं सिखाई जा सकती'' । ऐसा कहना संकुचितता कही जा सकती है । आज तो महिलाओं को वेद सिखाने का ब्राह्मण लोग इन्कार करते हैं, क्योंकि महिलाओं को उसका अधिकार नहीं है, परंतु वेदकाल में ही गार्गी और मैत्रेयी जैसी वेदज्ञ महिलायें थीं, जिन्होंने शास्त्रचर्चा में ऋषिमुनिओं को पराजित किया था ।

एकलव्य को तो विद्या सीखने की प्रबल भावना प्रगट हुई थी, इसलिए द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाई और उसमें सद्गुरु की भावना प्रगट करके अर्जुन से भी श्रेष्ठ बन गया । महाभारतकार ने अदम्य उत्साह और सद्गुरु की भावना का सफल उदाहरण रखा है, परंतु द्रोणाचार्य ने एकलव्य के पास अंगूठे की माँग की । मैं भले छोटा होऊँ, मुझे कहना चाहिए कि द्रोणाचार्य को ऐसी माँग नहीं करनी चाहिए थी । उस क्षण में तो वे भावना में नीचे गिरे गिने जाते, पंरतु मेरा कहने का अर्थ इतना ही है कि अदम्य उत्साह और प्रेरणा-भावना प्रगट हो तो सब साकार कर सकोगे ऐसा है ।

आज विवाह का प्रसंग है, यह मेरे लिए अलग ही प्रसंग है । ये दोनों मनुष्यजीवन का रहस्य प्रगट करें और जीवन में अदम्य उत्साह बताएँ यही अभ्यर्थना ।

दिनांक : ३०-५-१९६१

॥ हरिः ॐ ॥

१५. भावना का महत्त्व

द्वन्द्व का प्रयोजन

यह सुख-दुःख भगवान ने क्यों बनाये ? ऐसा विचार भी हमें आता है । चेतन सब में अपने-आप प्रगट हुआ है । नियम के अनुसार सब का विकास होता रहता है । उसी के अनुसार चेतन का भी है । **द्वन्द्व की स्थिति का हेतु ज्ञानप्राप्ति है ।** द्वंद्व के कारण सुख-दुःख, संघर्षण होते रहते हैं । वे निर्णित हैं, फिर भी टाले जा सकते हैं । नरसिंह मेहता ने गाया है, ''टालने पर भी किसी के नहीं टले ।'' परंतु वे टाले नहीं जा सकते होते तो जीव में से शिव नहीं हो पाते । पहले भी ऐसा हुआ है और आज भी वैसा होता है । संस्कृति ने अनेक उदाहरणों से यह हकीकत सिद्ध की है । उस का आधार कर्म पर होते हुए भी ऐसी स्थिति प्राप्त होती है कि सुखदुःख को टाला जा सके । सुखदुःख के अनुभव का आधार मन पर है । सुख और दुःख को मन किस तरह स्वीकार करता है और मन उसकी प्रतिक्रिया किस तरह करता है, उस पर सुख-दुःख के अनुभव का आधार रहा है ।

काल संक्षिप्त कर सकते हैं

सुख-दुःख, क्लेश, परेशानी, वेदना इत्यादि का आधार बुद्धि, चित्त, प्राण पर रहा है । मन, बुद्धि, चित्त की वृत्तियों की ऐसी भूमिका विकसित कर सकते हैं । ये सभी संवेदनाएँ दूसरों को होती हैं, उससे अलगरूप से हम अनुभव कर सकते हैं । परंतु ऐसी भूमिका विकसित करने से पहले हमें सुख-दुःख, परेशानी, वेदना इत्यादि की परिस्थिति में उसका रहस्य समझ सकें ऐसे मन, बुद्धि

को भी होना चाहिए । इसके लिए अनेक प्रकार की साधना की है और उस साधना के परिणाम स्वरूप अलग-अलग मार्गों से ऐसी अवस्था शीघ्र से शीघ्र कैसे प्रगट हो, उसका प्रयत्न किया है। स्थल और समय का भेद मिट जाँय और दोनों एक हो जाँय, उसके लिए भी प्रयत्न किया है । ऐसा प्रयत्न करते देखा कि समय को बढ़ाना हो तो बढ़ाया जा सकता है और संक्षिप्त करना हो तो संक्षिप्त किया जा सकता है । शोक इत्यादि में वह अवधि लम्बी लगती है और हर्ष, उत्साह में अवधि संक्षिप्त हो जाँय यह तो हम सब के अनुभव की बात है ।

ज्वालामुखी जैसी तमन्ना

हम हमारे मन इत्यादि करणों को प्रभुकृपा से ऐसी परिस्थिति में ला सकें तो एक ऐसी भूमिका आती है कि जहाँ समय के अस्तित्व का अनुभव नहीं होता । ऐसी स्थिति प्राप्त करना संभव है, तो फिर ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए हमें किस तरह वैसी भूमिका तैयार करनी चाहिए ? इसके लिए शास्त्रकारों ने, ऋषिमुनिओं ने अनेक प्रकार के प्रयोग किये और अलग-अलग अनेक रीतिओं का संशोधन किया । हम भी इसमें से साधन प्राप्त कर सकें ऐसा है । और समय होने पर भी समय के अस्तित्व की असर में से मुक्त रह सकें ऐसा है । परंतु ऐसी स्थिति के अनुभव के लिए हमारे में ज्वालामुखी जैसी दहकती हुई तमन्ना चाहिए। किसीने भी इस बारे में अगर ऐसा ध्येय तय किया हो, उन्हें भावना की बाढ़ में और हर्ष के आवेग में रह रहकर तमन्ना प्रगट करनी चाहिए। कालातीत स्थिति ऐसे लोगों के लिए संभव है, दूसरों के लिए संभव नहीं है ।

स्वभाव का रूपांतर

तो फिर प्रश्न यह उठता है कि दूसरे क्या करें ? हमारे समान जीव कि जिनकी भावना शुष्क न हो जाय इसके लिए उन्हें क्या

करना चाहिए ? उसके लिए भगवान का स्मरण, प्रार्थना, भजन, सद्वाचन, सत्संग इत्यादि साधनों का उपयोग करना चाहिए। इससे ये भावना कोमल रहेगी।

अनंत प्रकार के और अनंत मनुष्यों के साथ संबंध होते हैं। ऐसे संबंधों में मधुरता हो और उनके साथ सद्भाव, प्रेम, बंधुत्व के भाव से व्यवहार करेंगे तो हमारे स्वयं के लिए ही ऐसा करना है यह समझें; हमारी बुद्धि सूक्ष्म होगी, हमारी वाणी सरल होगी। यह समझें उसका असर हमारी प्रकृति-स्वभाव पर भी होगा। जिसे ऐसा उत्पन्न करना है , उसे संसार में इस तरह व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करेंगे तो स्वभाव में रूपातंर होने की संभावना है।

शक्ति की मर्यादा समझो

भगवान का नाम लिए बिना भी इस तरह जीने का सौभाग्य प्रगट हो तो भी जीवन बदल सकते हैं। चेतन का अस्तित्व कभी भी घट नहीं जाता। मात्र उसके अस्तित्व का ख्याल रखने से, उसके प्रति मुख होने से, हमारी महत्त्वाकांक्षा जितनी उन्नत हुआ करे वैसे-वैसे उसकी कक्षा भी उन्नत हुआ करेगी। फिर भी सामान्य व्यक्ति को अपनी शक्ति की मर्यादा तय कर लेनी चाहिए। कोई व्यक्ति कहता है कि करोड़ रुपये कमाने हैं, परंतु यदि उसके पास इतनी पूँजी नहीं होगी तो वैसा नहीं हो सकता। मेरे तुम्हारे जैसे ऐसा नहीं कर सकते हैं। श्रीमद् राजचंद्र जैसे वैसा भी कर सकते हैं, उनको अपने प्रारब्ध का विचार करते लगा कि उनको लाख रुपये का ऋण है। उन्होंने लाख रुपये कमाने तक व्यापार किया। घर में कुछ नहीं दिया। उनके परिवार का क्या हुआ होगा उसका ख्याल करो।

छोटा ध्येय रखो

स्वयं की स्थिति समझकर छोटा सा ध्येय भी लो। तुम्हारे में जिस प्रकार के विचार, कामना, इच्छा उत्पन्न होती है, उसे समझकर

छोटा-सा भी ध्येय रखो, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करो । ऐसे करते भी ध्येय उन्नत होता जायगा । भावना तो प्रकाश प्रदान करती है, सूझ-बूझ देनेवाली है । हमें कोई प्रवृत्ति करनी हो तो वह ध्येय रखकर करनी चाहिए । उसके लिए उत्साह, दृढ़ता, दरकार, अदम्य उत्साह दिखावें । उसके लिए फना होने की तैयारी, जीवन को न्योछावर करने की छटपटाहट होनी चाहिए । ऐसा नहीं होगा तो छोटा ध्येय भी प्राप्त नहीं कर सकते । छोटा-सा ध्येय प्राप्त करने अपार धैर्य और उत्साह हो तो गुण भी विकसित कर सकते हो । भावनापूर्वक हृदय के आनंद के उछाले मारती भावना से प्रयत्न करना चाहिए ।

वर्तनकला

संसारव्यवहार में दुःख तो अवश्य आनेवाला है । फलाना ने ऐसा किया, वैसा किया, ऐसा सब हमारे में हो तब उसका हेतु सोचना । किन्तु हमें उस व्यक्ति के समान व्यवहार नहीं करना चाहिए । हमें तो हमारी भावना सतेज रहे और हुआ करे उस तरह ही बरतना है । ऐसे बरतते बरतते भावना भी ज्वालामुखी समान होने वाली है । उसके साथ भगवान का नाम और सत्संग चालू रखना । ऐसा होगा तो ही हम चेतन के मार्ग पर जा सकेंगे यह बात निश्चित है । हम स्वयं भावना से बरतेंगे तो सामने वाला भी भावना से बरतेगा ऐसा नहीं होगा । दूसरे व्यक्ति अपनी भावना के अनुसार व्यवहार करेगा, परंतु हमें तो गुणशक्ति से बरतना है । गीता में भगवान ने कहा है कि **''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्थैव भजाम्यहम्''** (४/११) परंतु यह हमें हमारे सांसारिक व्यवहार में उपयोग नहीं करना है । उसमें तो ऐसा कहा गया है कि 'यदि बेईमानी करोगे तो मैं वैसा करूंगा' अर्थात् कर्म का परिणाम है, कर्म का बदला है । कर्म मिट नहीं जाता । इसलिए आप जिस तरह भावना से बरतेंगे, उसी तरह दूसरे

आपके साथ बरतेंगे यह आशा छोड़ दें । मैंने निश्चिय किया है कि मुझे ऐसे ही बरतना, और ऐसे बरतेंगे तो भावना को प्रकाशित कर सकेंगे और उत्तेजित कर सकेंगे ।

भावना से सत्संग

कोई कहे कि ''मुझे तो कुछ करना नहीं है'', तो मैं उसे कहूँगा कि ''तो फिर कभी दुःख की फरियाद मत करो ।'' आप आपके मन को जाँचे, आपका आनंद टिकता है या नहीं ? संसारव्यवहार में रहने पर भी आपका आनंद टिकता हो तो आप को यह मुबारक है, परंतु मैंने आपको मार्ग दिखाया है कि भावना को कोमल रखने का कर्म सत्संग है । भावना के साथ सत्संग करेंगे तो ध्येय को आगे बढ़ा सकेंगे । शेष संसारव्यवहार की सुस्त बैलगाड़ी में बैठकर रगड़ते रहना हो तो वैसा सही ।

महँगा मानवदेह

'मानवदेह अति दुर्लभ' इस वाक्यप्रयोग में रहस्य है । इसमें मसखरी का भाव नहीं है । इसमें जीवन के अनुभव का निचोड़ है । हमें मनुष्यजीवन तो प्राप्त हुआ है, किन्तु हमें मानवता के बारे में ख्याल नहीं है । मैं अनेक व्यक्तिओं के अनुभव में आया हूँ, किन्तु जीवन के महत्त्व के बारे में दिल में दिल से किसी को लग गया नहीं । ऐसे मनुष्य को भावना में प्रगट करने का मार्ग ही नहीं है । वह तो संसारव्यवहार में रगड़ाता ही रहेगा । आप भावना को कोमल रखने का स्वार्थ दिखायेंगे तो वह भी होगा । यह मैं ऐसे ही नहीं कहता हूँ ।

संबंधों में भावना

जिस जिस जीव के प्रति, क्षेत्र प्रति भावना विकसित करें उसे संग्राम न प्रगट होगा वैसा भी नहीं है । यदि जीवन भावना बिना

का हो और संग्राम प्रकट हो तो अफसोस करते हुए जबरदस्ती जीना बनता हैं । दूसरे पर दोष की टोकरी डाल देना बनता है । वृत्ति बहिर्मुखी ही रहा करे । संग्राम तो आयेगा ही । किन्तु एक भजन में आता है कि **''शूरवीर संग्राम को देखकर भागता नहीं है''।** भावना वाला, ध्येय वाला तो संग्राम आने से सशक्त होता है । ऐसा हो, तब जानना कि भावना प्रकट हुई है । दुःख के समय कुरबानी प्रगट हो, तब वही व्यक्ति भावना प्रकट कर सकता है । जीवननिर्वाह में मिले संबंधों से भावना कोमल-कोमल रखने का भान रखें तो भी जीव का कल्याण होने वाला है । भावना कोमल रखने के साथ सत्संग, भजन, प्रार्थना, स्मरण करोगे तो ही ध्येय के प्रति टिक सकेंगे । हमले के आवेश से बह जाने से तो जीवन नष्ट होगा और धूल में रगड़ेंगे ।

आनंद के लिए भावना

यदि हमें लगे कि मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है तो अनेक-अनेक प्रकार की कलाएँ प्रगट होंगी । इसका ज्ञानभान जागृत हो तो देवत्व और चेतनत्व प्रगट होने की संभावना है । हमें तादृश्य रीति से उत्कट भान जागा नहीं है । इससे हम आनंद की स्थिति में नहीं रहते हैं । इसलिए उच्च प्रकार के भावनात्मक आनंद में प्रगट होंगे तो ध्येय अवश्य प्राप्त कर सकते हैं । उसकी लिज्जत अलग प्रकार की है । इसलिए सर्वप्रथम जीवन की मर्यादा समझकर छोटा-सा ध्येय निश्चित करो और उस ध्येय के प्रति अंतर से, वफादारीपूर्वक प्रेमभक्ति से प्रयत्न करेंगे तो उस ध्येय को हम प्राप्त कर सकते हैं । ऐसा करते-करते आत्मविश्वास प्रगट होने से आगे बढ़ सकते हैं । अगर भावना विकसित करने का हमें भान प्रगट न होगा तो जीवन मुरदा जैसा बीतेगा । मनुष्यत्व विकसित करना हो वह भावना को महत्त्व दें । दूसरों के दोष के बारे में वह कम सोचे और बिलकुल

न साचे तो उत्तम । दोष देखें ही नहीं वैसा भी योग्य नहीं । किन्तु ऐसा देखना हो, तब भी भावना से जीना है ऐसा ख्याल करें । जिसे भावना प्रगट करनी है, वह ऐसे ही ख्याल में व्यस्त रहेगा ।

भावना जीवंत करने के लिए क्या करना चाहिए ?

जीवन का रहस्य अनुभव करना हो तो भी भावना से ही अनुभव कर सकते हैं; उसका सभी आधार भावना पर है । उसे विकसित करने के लिए छोटे से छोटा ध्येय रखें तो वह भी बड़ी बात है ।

मैं तो एक ही क्षेत्र में बीस साल रहा हूँ । भावना के बिना मानवता टिकती नहीं है । भावना प्रगट हो तो अन्य के साथ प्रेम-आनंद प्रगट हो; भाव-मनोभाव हो । भावना यह प्रत्यक्ष प्रमाण के बिना की बात नहीं है । भावना प्रगट हो तो एक दूसरे के साथ उत्साह प्रगट होगा । प्रत्यक्ष प्रमाण से अपने दिल का नाप निकालते रहें । प्रत्यक्ष लक्षण बिना की बात गलत है । **मनुष्यत्व मिला है, उसे तरोताजा रखना हो तो भावना को जीवंत रखना चाहिए । तभी मनुष्य रूपी पुष्प ताज़ा रह सकेगा ।** उसे नवपल्लवित रखने के लिए ऐसी भावना जीवंत रखनी पड़ेगी ।

मेरे गुरुमहाराज के हुक्म से इस मौनमंदिर की रचना की है । व्यक्ति जब मौनमंदिर में जाकर रहता है, तभी पता लगता है कि उसके मन में क्या भरा है । जमीन के अंदर तेल तो पड़ा ही था । परंतु उसके निष्णातों ने उसे खोजा । उस पर से आप समझो, आप भावना कोमल रखकर जीवन प्रगट करो ऐसी प्रार्थना है ।

दिनांक १३-६-१९६१

॥ हरिः ॐ ॥

१६. शब्द में प्राणप्रतिष्ठा

शब्द का विज्ञान

सायन्स की पुस्तकों की तरह साधना के बारे में भी पुस्तकें हैं । साधना के बारे में प्रसिद्ध पुस्तक पतंजलि मुनि द्वारा रचित ''योगसूत्र'' है । इस ग्रंथ में शास्त्रीय पद्धति से अलग-अलग प्रकार की साधना कैसे हो सकेगी यह लिखा है । उसमें शब्द की साधना के बारे में भी है, शब्द की साधना से साक्षात्कार हो सकता है; चेतन की भावना के साथ शब्द का उच्चारण किया जाये तो अन्य साधनों से जो परिणाम प्राप्त होता है, वह परिणाम शब्द द्वारा भी होगा ।

हम सब आशा, कामना, लोलुपता, ममत्व इत्यादि से भरे हुए होने के कारण यौगिक क्रियाएँ नहीं कर सकते, उसके लिए चित्तशुद्धि अनिवार्य है । इसलिए हम सब के लिए तो सरल साधन भगवान का नामस्मरण है । उसके साथ भजन-कीर्तन, सद्वाचन, सत्संग इत्यादि द्वारा भगवान की भावना को जीवंत बनाये रखें तो जीवन में शांति और प्रसन्नता रहेगी, जिसके परिणाम स्वरूप हमारे दैनिक कार्य भी सरलता से होते जाएँगे ।

कर्म छोड़े वह कायर

स्वयं को मिले हुए कर्मो से—संसार से—भागने वाला कायर-नामर्द कहा जाता है । मनुष्य को जो कर्म मिला है, उसे सर्वोत्तम रीति से करना चाहिए । इसलिए जिसे भगवान के मार्ग पर जाना हो, भगवान की भावना को जीवंत रखना हो, उसे अपने

सभी कर्म सर्वोत्तम रीति से करने चाहिए । उसमें से भाग निकलने का विचार योग्य नहीं है ।

सिर्फ माला नहीं

हमें हमारे हिस्से में आया कर्म हमारा स्वार्थ कम करके करना है । उसके उपरांत कर्म करते हुए हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह कैसे कम हों, ऐसा प्रयत्न करते रहना चाहिए । फिर उसके साथ-साथ सत्संग भी करते रहना चाहिए, तभी भावना उच्चतर होती जायगी और मन में हलकापन प्रगट होगा । शांति होगी और चित्त में प्रसन्नता प्रगट होगी । इससे बुद्धि में भी बदलाव आएगा । सिर्फ माला घुमाते रहने से कुछ खास नहीं होगा । प्रतिदिन के सांसारिक व्यवहार में आठ-दस घंटे के लिए भगवान की भावना को कोमल, मृदु रखें और उसके लिए सजग रहें तो शब्द का असर अलग ही होगा ।

चेतन अनजान क्यों ?

चेतन तो है ही, अन्यथा उसके बिना इंद्रियाँ कार्य नहीं करतीं, परंतु आज चेतन प्रकृति रूप बन गया है । धरती में एक ही प्रकार का रस होता है, फिर भी जिस प्रकार की वनस्पति उस रस को चूसती है, उसी प्रकार के स्वाद में वह रस परिवर्तित हो जाता है । इमली रस चूसती है तो रस खट्टा होता है और नीम चूसे तो रस कड़वा होता है । उसी तरह एक ही प्रकार का चेतन व्यक्त रूप से अलग-अलग होता है । जो जो साधन उस चेतन को धारण करता है, वह उस प्रकार का होता है । फिर भी वह अलग भी रहता है । **हम प्रकृति रूप हुए होने के कारण चेतन होते हुए भी उसे नहीं पहचान सकते ।**

शब्द का चमत्कार

चेतन की उपासना हो सके, इसके लिए शब्द में सातत्य का प्राकट्य आवश्यक है । शब्द में प्राणप्रतिष्ठा हो तो उसके अनेक चमत्कार देखने मिले । शब्द न हो तो हमारा व्यवहार भी मुश्किल बनता है । व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का संबंध सुखद या दुःखद शब्द के कारण ही होता है । अगर शब्द का उच्चारण कठोरता से करें तो सामने वाले व्यक्ति के भाव बिगाड़ते हैं । शब्द में मधुरता की आवश्यकता है । इसलिए यदि शब्द के पीछे की भावना प्राणवान रखें तो जरूर मधुरता बढ़ा सकते हैं । संसार में किसी की गरज जागती है, तब हम उसके प्रति मधुरता रखते है । उस समय हमें उस प्रकार की चेतनात्मक जागृति होने के कारण हम मीठी भाषा का प्रयोग करते हैं । यह हम सब के अनुभव की बात है । उसी प्रकार यदि हमें जीवन की गरज प्रगट हो तो शब्द में से अनेक प्रकार की स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं । ईश्वर की कृपा से हमें मनुष्यत्व मिला है तो उस भावना को हम जीवंत रख सकते हैं ।

ज्ञानदेव का दृष्टांत

ज्ञानदेव के पिता साधु हो गये थे । जब उनके गुरु को ज्ञात हुआ कि वे विवाहित हैं, इससे उनको संसार में वापस भेज दिया, परंतु उनकी भावना उच्च हुई होने से संसारव्यवहार का स्वीकार करके चार संतानें हुईं, तथापि वे संतान उत्तम कोटि की हुईं । वे साधु बने थे । इसलिए उनकी संतानों को कोई भी यज्ञोपवीत संस्कार करवाने को तैयार नहीं थे । इसके लिए पंडितों की सभा मिली । ज्ञानदेव ने कहा, ''वेद जाने इसमें क्या बड़ा काम किया ? वेद का गान तो भैंसा भी कर सकता है !'' उन्होंने शब्द की ऐसी प्रचंड उपासना की थी कि भैंसे में प्राणप्रतिष्ठा प्रगट हुई और भगवान

की प्रगट हुई उस शक्ति के प्रताप से भैंसे के मुख से वेद के मंत्र बुलवाये थे ।

हजार वर्ष का तप एक जिंदगी में

हमारी जीववृत्ति शब्द की शक्ति को उठाव नहीं दे सकती है। यदि शब्द में सातत्यता प्रगट कर सके और यदि उसकी भूमिका विकसित हो तो वृत्तिओं का ऊर्ध्वगमन हुए बिना रहता ही नहीं। **यदि शब्द में सातत्य उत्पन्न होगा तो हजार वर्ष के तप के द्वारा भी जिन वृत्तियों को लय नहीं कर सकते, उन्हें इस जिंदगी में ही लय कर सकें, ऐसी शब्द की शक्ति है ।**

जपयज्ञ आरंभ करके देखो

गीतामाता कहती है कि 'जपयज्ञ' यह सब से बड़ा शास्त्र है। दस बीस हजार रुपये खर्च करके यज्ञ करो उससे अच्छा है कि जपयज्ञ का प्रारंभ करो। सच्चे यज्ञ से मुग्धता-स्निग्धता पगट होती है। जिस प्रकार मशीन को तेल की आवश्यकता है, उसी प्रकार हमारे मन इत्यादि करणों को अच्छी स्थिति में रखने का साधन भगवान का नामस्मरण है, परंतु वह करके देखने से ही पता लगता है। कर्म करते-करते यदि नामस्मरण करो और मन, बुद्धि, आदि की भूमिका यदि उस स्मरण को सहकार दे तो शब्द में प्राणप्रतिष्ठा अवश्य उत्पन्न होगी । यह अनुभव का विषय है । प्रयोग करने से ही पता लगेगा । करके देखो, इससे पता लगता है कि यह तो दीपक जैसा साफ है ।

ऋषिमुनिओं ने स्वयं का अनुभव जगत को दिया है। संसार में उलझन, समस्या दु:ख इत्यादि तो आयेंगे, परंतु सभी भगवान को कहा करो । आत्मनिवेदन करते रहो; प्रयोग करने से पता लगेगा। ऐसा हो सके इसके लिए गुरुमहाराज की कृपा से यह

आश्रम किया है । व्यक्ति अंदर आकर परिश्रम करेगा तो उसके गहरे संस्कार पड़ेंगे और वे संस्कार जब उदित होंगे, तब उसका परिणाम अति उत्तम होगा ।

प्रवचन सुनने की असर हमारे पर नहीं होती है । अनेक साधु-महात्माओं की कथाएँ चलती हैं, फिर भी समाज पतित दशा में है, पहले से भी गिरा पड़ा है । उसमें से बचने का, ऊपर आने का एक ही रास्ता है और यह है भगवान का नामस्मरण । हम सद्वाचन करें और भावना जगायें तो ही जीवन ऊँचा कर सकते हैं । जिसके जीवन में भावना प्रगट हो गंगामैया के प्रवाह के समान लगातार नामस्मरण प्रगट हो, उसका जीवन सर्वोत्तम प्रगट होता है और ऐसा व्यक्ति समाज की सर्वोत्तम सेवा कर सकता है ।

अर्जुन कसाई के घर ज्ञान लेने जाता है । वह देखता है, तब उसे पता लगता है कि जीवननिर्वाह के लिए कैसा भी कर्म मिला हो, किन्तु उसे कर्म का दोष नहीं । कर्म किसी भी प्रकार को हो, इससे उसे दोष नहीं है । कर्म वह दोष का कारण नहीं है । **कर्म करते समय मन इत्यादि करण जिस प्रकार के रहते हैं, उससे ही दोष होते हैं, इसलिए उस दोष का स्पर्श न हो, ऐसी स्थिति भगवान के नाम से प्रगट होती है ।**

संसार में आनंद से जीना हो तो उसके नाम का व्यापार चलाओ; उसके लिए गुरुमहाराज की आज्ञा से यह मौनमंदिर बनाया है ।

दिनांक २०-६-१९६१

॥ हरिः ॐ ॥

१७. शांति-प्रसन्नता की प्राप्ति

मन के प्रकार

मन दो प्रकार के हैं-१. जागृत मन—उससे विचार और भावनाओं को समझ सकते हैं। (२) अजागृत मन—जाग्रत मन की प्रक्रिया शांत पड़ती है, तब अजागृत मन में रहा हुआ प्रगट होता रहता है। अजागृत मन अनंत सागर से भी विशेष गहन है। अजागृत मन में इतना सब भरा हुआ है कि उसका अंत आये ऐसा नहीं है। उस अजागृत मन में जो भरा है वह रात्रि में स्वप्न रूप में बाहर आता है। **हमारा शरीर नींद लेता है, किन्तु मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् जागृत होते हैं।** चंचल शरीर को जीतने के लिए नींद आवश्यक है। अजागृत मन में से अलग अलग प्रकार के विचार और वृत्तियाँ उठती हैं, वे स्वप्न में प्रगट होते हैं। उस समय अजागृत मन में इतना हल्ला होता है कि उसका असर ज्ञानतंतुओं पर होता है।

अजागृत मन

यदि हमारे बर्ताव से शांति-प्रसन्नता रहा करे और किसी भी प्रकार का संघर्षण प्रगट न हो तो जागृत मन को हम शांत कर सकते हैं। वह शांत हो, तब हमारे अजागृत मन में से सब बाहर आता है। जाग्रत मन में शांति न हो तो अजागृत मन में पड़ा हुआ घूरा बाहर नहीं आता। गंदगी पर मिट्टी ढाँकी हो तो दुर्गंध नहीं आती। जागृत मन को शांत करते हैं, तब अजागृत मन में से इतना सब हल्ला हो कि यदि हम सजग हों और चित्ततंत्र की समतुला बनायें तो ही हम उसे निकाल सकते हैं। वह इतना बड़ा प्रवाह होता है कि पूरा होता ही नहीं है, किन्तु यदि हम उसे गुजरने दें तो वह

बह जाता है । तालाब का पानी नहर के द्वारा समुद्र में खाली हो, उस तरह मन खाली हो जायगा ।

उसकी गहनता

जागृत मन यदि शांत हो तो ही चित्त तटस्थता से और समता से सब देख सकता है और तो ही अजागृत मन नीरव बनने की संभावना । हमारे इस अजागृत मन में अनेक प्रकार के संबंधों के —अनेक जन्मों के संस्कार और भाव पड़े हैं । जमीन खोदते-खोदते कोयला, तेल इत्यादि मिलते हैं सही, किन्तु उसका भी अंत आता है, किन्तु अजागृत मन में तो इतना सब पड़ा होता है कि उसका अंत न आये ।

हेतु समझो

जागृत मन को शांत और नीरव करने की शक्ति मनुष्य में है, परंतु अजागृत मन को शांत करने की शक्ति नहीं है । अभी की स्थिति में मनुष्य स्वप्रयत्न से दैवी नहीं है । जब तक सचमुच अदम्य, अटूट, एकसी तत्परता प्रगट न हो, तब तक यह नहीं बनता। भगवान के भजन-प्रार्थना करें, किन्तु उसका हेतु न समझें तो वह क्रिया भी जड़ हो जाती है, उसका उत्तम परिणाम प्राप्त नहीं होता ।

मर्यादा पहचानो

इसलिए इसमें बैठने वाले को भावना प्रगट करने के लिए ज्ञानात्मक झुकाव रखना चाहिए । **सात, चौदह या इक्कीस दिन मौनमंदिर में बैठने से मन को संपूर्ण रूप से शांत करना संभव नहीं है ।** परंतु उसके संस्कार अवश्य पड़ते हैं । ऐसे संस्कारों का उदय हो, तब जीव गति वाला बनता है, यह निश्चित हकीकत है । मौनमंदिर में बैठने से दैनिक व्यवहार में किस तरह बरतना यह भी प्रगट होगा । व्यक्ति को अपना ध्येय निश्चित कर लेना चाहिए । भगवान का अनुभव सभी के लिए शक्य नहीं है।

वह तो शक्ति बाहर की बात है । मानव-तंत्र की ऐसी कोई शक्ति व्यवस्था नहीं है कि एक ही रीति से सब का उद्धार हो जाय ।

छोटा, परंतु बड़ा कदम

मौनएकांत मंदिर में हम यह सोचकर बैठते अवश्य हैं कि हमें चेतन का साक्षात्कार हो, परंतु हमारा व्यवहार उसके अनुसार नहीं हो तो कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता है । प्रत्येक व्यक्ति स्वयं शांत रह सके उसके लिए उसे सावधानी से, प्रामाणिक रूप से, वफादारी के साथ-लगातार प्रयत्न करते रहना चाहिए । ऐसा हो सके तभी अपने-आप आगे बढ़ सकते हैं । यह कदम छोटा भले ही लग सकता है, फिर भी बहुत बड़ा कदम है । एक-सी शांति और प्रसन्नता प्रगट हो इतना ही ध्येय रखें ।

अशांति का कारण

शांति और प्रसन्नता प्रगट हो सके उसके लिए बरतने की रीति का प्लान-योजना बना देनी चाहिए । हमारे में शांति, प्रसन्नता टिकते नहीं । उसका मूल कारण हमारे स्वयं में है । हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा, तृष्णा आदि में डूब गये हैं, उसके लिए शांति टिकती नहीं है । हमारे कर्म के कारण हम अन्य व्यक्तिओं के साथ जुड़े हुए हैं । हमारी आशा, तृष्णा, लोभ के कारण हमें उनमें आसक्ति होती है, उसके कारण संघर्षण होता है । ''मेरे में ऐसा नहीं हो'' ऐसा मनोभाव प्रगट करने का रखें तो हमारी शांति-प्रसन्नता घायल नहीं होगी ।

व्यक्ति ही समाज है

हमारे साथ के जीव सुधर जाँय ऐसी आशा रखना व्यर्थ है । जो करना है, यह हमें स्वयं करना है । शांति-प्रसन्नता घायल न हो तो आनंद और मस्ती की लहर में रमण कर सकते हैं । इतना करें तो भी पर्याप्त है । सामर्थ्य तो प्रत्येक व्यक्ति में रहा है । एक

व्यक्ति इस तरह बरतता हो तो दूसरे पर उसका असर हुए बिना नहीं रहता। व्यक्ति केवल इतना ही बनाये रखे तो समाज की सेवा नहीं करनी पड़ती। इस प्रकार के व्यक्तिओं का समूह सत्संग द्वारा दूसरों पर भी असर कर सकेगा। स्वयं अकेला ऐसा करता होने से वह समाज की सेवा करता है। बाहर जाकर सेवा करने की रीति मुझे पसंद नहीं है।

त्याग की भूमिका आवश्यक

सेवा के क्षेत्र में कार्य किया है। मैंने देखा कि आशा, तृष्णा, राग, द्वेष इत्यादि द्वंद्व से भरे हुए सेवा करते हैं; ऐसे साधन द्वारा होती सेवा के परिणाम रूप व्यक्त भी वैसा ही होता है। रागद्वेष के वलय ही पैदा होते हैं। जब स्वयं उत्तम प्रकार की शांति और प्रसन्नता प्रकट हो, उसके बाद ही सेवा के कार्य में या दूसरे प्रकार के कर्म ठीक से हो सकते हैं। इस प्रकार की शांति त्याग से ही प्राप्त हो सकती है। प्रत्येक की पूरी कीमत चुकानी चाहिए। जैसे रेगिस्थान में सरोवर मिथ्या है, उस प्रकार त्याग बिना कुछ भी पाना यह मिथ्या है।

शक्ति तो प्रयत्न करने वाले को मिलती है

अनेक लोग आशीर्वाद चाहते हैं, अरे ! दो पैसे पाना हो तो भी काम करना पड़ता है। कोई साधु महाराज कहता है कि आशीर्वाद देता हूँ, परंतु उसमें जो खमीर प्रगट होना चाहिए, उसके लिए कुछ नहीं किया। ऐसे आशीर्वाद तो व्यक्ति को अपंग बनाते हैं। **भगवान की कृपा या आर्शीवाद में शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं है, शक्ति तो जहाँ आवश्यक हो, तो वहाँ स्वयं प्रगट होती है। वह तो प्रयत्न करने वाले को अपने-आप बिना माँगे प्राप्त हो जाती है।**

तो आशीर्वाद मिलेंगे

जो लोग कृपा की बात करते हैं और कुछ भी किये बिना केवल आशीर्वाद माँगने की बात करते हैं, उनको वह जैसे का तैसे नहीं मिलेंगे । यहाँ आनेवाले के मन के मनोभाव भी समझ सकता हूँ। आँख का खेल, हँसी-ठठोली, नाज-नखरें सभी देखा है । परंतु स्वजन के सिवा किसी के बारे में कहता नहीं । स्वपरिश्रमी है, वफादारीपूर्वक प्रेमभक्ति प्रगट हुई हो तो वैसे के ऊपर महात्माओं की कृपा होती है । प्रयोग करने की भी किसी की तत्परता मैं तो नहीं देखता। अनेक बोलते हैं किन्तु करने की तत्परता चाहिए । सच्ची झंखना व्यक्त हुए बिना नहीं रहती । कोई व्यक्ति क्रोधी हो या लोभी हो तो वह क्या व्यक्त हुए बिना रहता है ? हम संसर्ग के कारण वृत्तिओं को समझ सकते हैं । इसलिए जीवन को ऊपर उठाना चाहते हैं वैसे जीव को आशीर्वाद माँगने जाना नहीं पड़ता। भगवान की कृपा-चेतना तथा आशीर्वाद उनके साथ ही होते हैं । श्रीरामकृष्ण परमहंस जैसे महात्मा हर देश में होते हैं। इसलिए समाज की भावना जीतीजागती रहती है । इसलिए यदि हम प्रयत्न करेंगे तो आशीर्वाद-कृपा मिलेंगे ।

शांति के लिए सबल उपाय

अब मूल बात पर आऊँ । जागृत मन को शांत कर सकें उसके लिए भगवान का स्मरण, सद्वाचन वर्तन की कला, दूसरों के साथ व्यवहार में आये तब संघर्षण न हो इसके लिए वफादारी, प्रामाणिकता और प्रेमभक्तिपूर्वक प्रयत्न करने चाहिए । उसके साथ स्वयं स्वयं का निरीक्षक बनना पड़ेगा । हमें हमारे मन इत्यादि करणों का निरीक्षण करते रहना चाहिए । ऐसा करने से हम उन से अलग हैं, ऐसे प्रकार की शक्ति प्रगट होती है । इसके कारण उसमें हम

मिल नहीं जाते। इसलिए उसमें तद्रूप नहीं हो जाते, किन्तु उसके साक्षी बन सकते हैं। अब जो व्यक्ति आत्मनिष्ठ है, उसके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् में भेद नहीं होता। यदि हम उसके हृदय के साथ एकरूप होने का हृदय से प्रयत्न करेंगे तो वह भी हमारे साथ तद्रूप ही होने से उसके हृदय की शांति, प्रसन्नता के सहज गुण हम भी अनुभव कर सकते हैं। किन्तु हमें उसके साथ जुड़ने का संकल्प तथा प्रयत्न तो करना चाहिए।

चेतन के अनेक गुणधर्म हैं। ये सब एकसाथ प्रवर्तमान होते हैं। उन गुणधर्मों को आत्मा के अनुभविओं अनुभव करते होते हैं। मन में जो हो उसके साथ मिल न जाकर उसे देखने लगें और ऐसे करते-करते प्रार्थना करें। ऐसा प्रयत्न करते-करते हम जरूर मुकाम पर पहुँचते हैं। **आर्द्रतापूर्ण गद्‌गद भाव से प्रार्थना करेंगे तो मदद पास ही खड़ी है।** ऐसी स्थिति प्रयत्न करने से होगी। आत्मनिरीक्षण, आत्मनिष्ठ के हृदय के साथ संधान और प्रार्थना- ये तीन साधन कर सकें तो शांति-प्रसन्नता बना सकते हैं और आगे की सीढ़ियाँ खुली हो जाती हैं।

दिनांक ७-४-१९६१

॥ हरि:ॐ ॥

१८. रखे लाज हमारी

'मोटा' में अपने 'गुरु'

पिछले मंगलवार (दि. ८-७-१९६१) इस आश्रम पर और मेरे पर काला कलंक लगे ऐसी घटना बन गई । और एम.बी.,बी.एस. तथा नेत्ररोग निष्णात उपरांत परदेश की डिग्री वाले एक भाई मौन में बैठे थे । मौनमंदिर में मेरा चित्र देखकर उनके मन में द्विधा हुई । उनके गुरु कोई दूसरे थे । फिर पाठपूजा करना उनका नियम था । उनको हुआ कि मेरे गुरु के सिवा दूसरे को कैसे वंदन, प्रणाम करें ? तुलसीदास ने वृंदावन में श्रीकृष्ण की मूर्ति देखी । वे तो राम के भक्त थे । भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति को कहते हैं कि 'भगवान आपको नमन नहीं करूँगा, किन्तु आप ही राम हो, मेरे ही इष्टदेव हो ऐसी मुझे साबिती मिले तभी मैं नमन करूँगा । इसलिए आप धनुष्यबाण हाथ में लो । भगवान श्रीकृष्ण की मूर्तिने धनुष्यबाण हाथ में लिए । यह प्रसंग इस डाक्टर को याद आया । उन्होंने ऐसी प्रार्थना की कि **मोटा** में ऐसी शक्ति हो तो मुझे मेरे गुरुमहाराज के दर्शन हों और उनको ऐसा हुआ । फिर भी ये कल्पना की तरंग तो नहीं है न ? इसके लिए उन्होंने अनेक रीति से परीक्षण किया । जब उन्हें भरोसा हुआ कि यह गुरुमहाराज ही हैं, तब उनको बहुत आनंद हुआ । यह अनुभव उनको बहुत उपयोगी हुआ ।

तापी में कूदे

चार-पांच दिन उनको बहुत अच्छा लगा, बाद में उनको भावावेश आया । पागलपन जैसा लगा । उन्होंने भोजन लिया नहीं था, यह उनकी भूल थी ऐसा उन्होंने कबूल भी किया, किन्तु वे लश्करी आदमी थे, इससे आवेश बहुत था ।

उन्होंने ऐसा कहा कि भावावस्था में भी उन्होंने मेरी चिट्ठी पढ़ी थी । किन्तु उनको मौनमंदिर में से बाहर निकालने में आये यह उनको बलात्कार जैसा लगा । इससे ओच्छवभाई को पकड़कर खुद उनको मारने गये थे । बाहर निकल कर तापी नदी में स्नान कर के मौनमंदिर में बैठने की उनकी इच्छा थी । इससे सब प्रार्थना में बैठे । इससे वे तो नदी में गिरे । मैंने पूछा, ''मुझे पूछना तो था, ऐसा क्यों किया ?'' उन्होंने कहा, ''दूसरे मुझे ऐसा नहीं करने देते ।'' मैंने कहा, ''मैं अवश्य आपकी बात मानता ।'' किन्तु उनको विश्वास नहीं होने से तापीमाता में स्नान करने के लिए वे नदी में कूद पड़े । यह बात उनके शब्दों में मैं आपको सुनाता हूँ ।

कृपा का चमत्कार

''नदी में कूद तो गया, लेकिन जमीन पर मेरे पैर स्पर्श ही नहीं होते, मैं अंदर बहता गया । मुझे तैरना आता नहीं, फिर भी बहने का मुझे भान रहता था । बीच-बीच में पानी के ऊपर आ जाता था। दस-बारह जगह गहरा पानी आया था । रांदेर के तट पर गहरा पानी था । वहाँ रस्सा डालकर मुझे बाहर निकाला । मैंने लश्कर में काम किया था, इसलिए मेरी इच्छा विरूद्ध कोई कुछ करे तो मैं गुस्से में आकर एक थप्पड़ लगा दूँ । मुझे पानी से बाहर निकालने के बाद में मैं फिर उसी में गिरने जाता था, क्योंकि मुझे स्नान करना था और लोग उसका विरोध करते थे ।

'यह सब हुआ यह भगवान की कृपा का चमत्कार है, उसका मुझे विश्वास हुआ है । एक बूँद भी पानी का पीया नहीं जा सका । पैर को जमीन का स्पर्श होता, तब बाहर निकलने का बुद्धि में सूझा नहीं । बाहर निकलता-अंदर डूबता-ऐसे करते रांदेर के तट पर पहुँचा । मुझे मेरी रीति अनुसार बरतने नहीं दिया तब मैंने हल्ला किया ।

डॉक्टर रस्से से बंधे

डॉक्टर अहमदाबाद पहुँचे । वहाँ भी हल्ले की दोचार घटनाएँ हुई थीं । इसलिए उनको रस्से से बंद कर दिया था । तब उन्होंने अपनी पत्नी को बताया कि ''मैं जोर से करता हूँ यह आवेग के कारण करता हूँ, मैं पागल नहीं हुआ हूँ ।''

किन्तु वे लोग माने नहीं, उनके कहने से एक संबंधी को उनके घर बुलाया गया । डाक्टर को आध्यात्मिक बाबत के प्रश्न पूछे । डाक्टर ने उत्तर दिये, तब विश्वास हुआ । इससे उस संबंधी की जमानत पर उनको बंधन मुक्त किया ।

उसके बाद वे लिखते हैं कि

'उसके बाद मेरी पत्नी ने किसी अच्छे वैद्य को दिखाकर दवाई कराने का कहा । नडियाद में एक अच्छे वैद्य मेरे सगे थे । इसलिए मैंने मेरी पत्नी को कहा, ''दवाई करानी हो तो नडियादवाले वैद्य को दिखायें ।' मेरी तीव्र इच्छा तो नडियाद जाकर 'मोटा' को मिलने की थी । ऐसे तो मुझे कोई नडियाद नहीं जाने देता । इसलिए मैंने ऐसा कहा । हम नडियाद आये और ताँगे में बैठे इससे मैंने ताँगे वाले को कहा, 'हरि:ॐ आश्रम को ले चलो । इससे मेरी पत्नी को फिर से घड़क लगी ।''

इस तरह वे मेरे पास आये और उनको जो कुछ हुआ था, उसका सब वर्णन किया । इसके द्वारा मैंने आपको यह सब बात बताई । डाक्टर ने मुझे कहा कि, '**मोटा,** आंतरिक रूप से मैं संपूर्ण सजग था । बाहर से सब मुझे बुलाते थे, यह मुझे पसंद नहीं था । मैंने दो दिन खाया नहीं यह मैंने बड़ी गलती की । किन्तु तापी में स्नान करने जाते समय मुझे जबरदस्त अनुभव हुआ है । भगवान की शक्ति के कारण से बचा हूँ, अन्यथा बचता नहीं । क्योंकि मुझे

तैरना तो बिलकुल आता ही न था। अंत में भगवान ने लाज रखी।'

भगवान के साथ संबंध

'मोटा' के प्रति जो आदरभाव भक्तिभाव रखते हो उसका यह परिणाम है। आश्रम तो एक संस्था है, यह जड़ है, किन्तु चेतन के प्रति जितना भाव बढ़ाएँगें उतना अच्छा परिणाम आयेगा।

संसार में स्वार्थ के लिए भगवान की भक्ति करेंगे तो उसका भी बदला मिलेगा, किन्तु सुबह से उठकर भगवान का ख्याल रखकर कामकाज किया करेंगे तो मन हलका रहेगा, मुसीबतें टलेंगी और शांति मिलेगी।

हमारा कोई मित्र हो, बहुत अच्छी स्थिति हो, धनवान हो और हम हमारी जरूरत के समय उसके पास जाँये तो वह अवश्य मदद करेगा। यदि प्रेमभावभरा संबंध हो तो दो पैसे की जरूरत हो तो वह अवश्य मदद करता है। किन्तु यदि ऐसा संबंध न रखा हो तो काम नहीं बनेगा। हम ऐसा संबंध नहीं रखते थे, इसलिए कहता हूँ कि 'भगवान के साथ दिल में प्रेम से संबंध रखा करो।'

हम भले संसार के रगड़े में पड़े हों, किन्तु उसे संसारव्यवहार के काम में भी जीवित रखें तो भी उसकी मदद मिलती ही है। डॉक्टर तापी के गहरे पानी में बह गये फिर भी डूब नहीं पाये, यह तो भगवान की कृपा का चमत्कार है। मुझे ऐसा कहने में आया है कि वह 'भगवान का नाम लेने वाला है'। पुनीत महाराज ने भी मुझे कहा था कि 'वह बड़ा भक्त है'। इसलिए मैंने उनकी बहुत दरकार नहीं की। उनको ऐसे हमले आते हैं, उसका मुझे ख्याल न था, अन्यथा पहले से ख्याल रखता।

एक सन्नारी मौनमंदिर में रही थीं । उन्होंने मुझे अपनी स्थिति के बारे में पहले से बात की थी, इससे मैंने पहले से दरकार रखी थी ।

भाई, हमारे पास तो कुछ नहीं है, हमारे भगवान समर्थ हैं । **कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थः'** करने, न करने और उल्टा करने वे समर्थ हैं । वे सब दरकार रखेंगे । फिर भी ऐसा कुछ हो और मैं उपस्थित होऊँ तो पहले से मुझे बात कर देनी चाहिए ।

यदि भगवान के साथ संबंध रखा हो तो सच्चा हल मिलेगा । यदि कोई मित्र के साथ संबंध रखा हो तो मदद में आये बिना नहीं रहता । भगवान हमारा भाईबंधु, सगा हैं । स्वार्थ के संबंध से इस प्रकार का संबंध अनेकगुना उत्तम है, किन्तु हमें उसका ख्याल नहीं है, इसलिए हमारे से ऐसा नहीं होता ।

वैज्ञानिक हकीकत

जड़ से जड़ वस्तु भी अणुपरमाणु से बनी है, ऐसा विज्ञान ने साबित किया है । यह शरीर, तारे, नक्षत्र, संपूर्ण ब्रह्मांड हमें जो दीखता है और हम जिसे पूर्ण रूप से नहीं देख सकते वह सब-अणुपरमाणु से भरा हुआ है । इसलिए **हम जिसे केवल देखते हैं, वही सत्य नहीं है, किन्तु उसमें जो रहा है, वह सत्य है ।**

विज्ञान अभी Divinity दिव्यता का ख्याल पूर्णरूप से नहीं दे सका है, क्योंकि उसके बारे में पूरा भान प्रगट नहीं हुआ है । वह भान प्रगट हो तो हम सब बहुत आगे बढ़ जाते ।

फिर भी वैज्ञानिक में एक बड़ी गुणशक्ति है । एक वस्तु का-प्रश्न का जब तक हल न मिल जाय तबतक उसके पीछे लगा रहता है । सजगता और धैर्य की गुणशक्ति बहुत महान शक्ति है । जिस विषय को पकड़ा हो, उसको एकसा चिपककर रहता है, उसे ही

उस विषय का रहस्य प्राप्त होता है। हम उस पर चिपककर रहते नहीं, इसलिए उसका रहस्य प्राप्त नहीं होता।

शक्ति है ऐसा विज्ञान ने साबित किया है। इसलिए **बाहर से दिखता है, यह सत्य नहीं है, किन्तु अंदर शक्ति है, वह सत्य है। जगत मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है, यह वैज्ञानिक हकीकत है।**

'मोटा' के साथ दिल की जंजीर बांधो

हम शुद्ध भक्ति तो कर नहीं पाते हैं। इसलिए संबंध तो बांधो, स्वार्थ के लिए तो ऐसा करो। भगवान ऐसी शक्ति है कि वह अदृश्य नहीं है। संपूर्ण ब्रह्मांड में जो चेतना है, वही चेतनाशक्ति चेतननिष्ठ जीवात्मा में प्रगट हुई होती है। उसमें शक्ति का स्वरूप प्रगट हुआ होता है। **उसके साथ जीवंत संबंध रखें, उसके साथ मैत्री रखें और मुश्किल के समय उसीकी प्रार्थना करें।** स्वार्थ बिगड़ता हो, तब उसे पुकारिये। किन्तु यों ही पुकारने से नहीं चलेगा। उसके साथ प्रेमपूर्ण दिल का, ज्ञानपूर्वक का संबंध रखा होगा तो काम सिद्ध होगा। यह तो प्रयोग करके अनुभव कर सकते हैं ऐसा है, किन्तु मनुष्य के दिल में यह प्रगट नहीं होता। इस प्रकार का संबंध बुद्धि आपको सुझायगी, मदद करेगी, किन्तु उसके लिए चौबीस घंटे तक की आप के दिल की जंजीर उसकी साथ जुड़ी रखनी चाहिए।

बुद्धि में प्रकाश

बुद्धि भी भगवान का स्वरूप है। संसार की समझ उसके द्वारा प्रगट होती है। संजोगों का प्रकाश भी बुद्धि द्वारा देख सकते हैं। उस भगवान के साथ एकसा सतत संबंध करें तो बुद्धि अधिक तेजस्वी, मार्गशोधक और कामयाब बन सकेगी, संसारव्यवहार में अनेक प्रकार की स्मस्याएँ प्रगट होती हैं। भगवान के चरणकमल

में यदि समस्याएँ भी रखें और उनके साथ प्रेमभरा संबंध हुआ हो तो हल तुरंत ही मिलता है । जैसे बिजली चालू करने के लिए स्विच दबाने की आवश्यकता होती है, उसके अनुसार भगवान के साथ जीवंत संबंध रखकर उसे पुकारोगे तो वह उपस्थित हो जाता है, किन्तु हम संबंध बांधने स्विच का उपयोग भी नहीं करते । उसके साथ यदि प्रेमभाव वाला संबंध हो तो बुद्धि—जो एक साधन है—उसके द्वारा हल मिल आता है ।

दोस्ती बांधो

संसार के कर्म उत्तम से उत्तम रीति से करने उस संबंध को जीवंत रखें । जब बालक छोटा हो, दूसरे बालकों का देखकर माता के पास मोटर, इंजन या ऐसा खिलौना माँगता है, तब उसे माँगते संकोच नहीं होता । माँ भी अगर योग्य लगे तो दिलाती है । माँ यदि बहुत खुश हो तो बालक जो माँगता है वह दिलाती है । क्योंकि एक दूसरे से दिल से जुड़े हुए होते हैं । उसी तरह हम भगवान के साथ दिल से जुड़े रहें तो मन, बुद्धि, चित्त, प्राण द्वारा काम कर सकते हैं, किन्तु हम तो उसके साथ दोस्ती बाँधते नहीं ।

भगवान की शक्ति द्वारा मदद

भगवान में अनंत प्रकार की शक्ति है और उसे सिद्ध कर सकें ऐसा है । मेरे अनुभव की एक बात है । १९६२ में वीसापुर (जि. महेसाना, गुजरात) जेल में से छूटकर मैं मुंबई गया । ठक्करबापा मुंबई में 'हिंद सेवक समाज' के उपप्रमुख थे । 'जन्मभूमि' की कचहरी के बाजू में उनका कार्यालय था । वहाँ जाकर उनके पाँव पड़ा । उन्होंने मुझे कहा, 'अब फिर से जेल में जाना आवश्यक नहीं है ।' परीक्षितलालभाई, हरिवदन ठाकोर, हेमंतभाई आदि जेल में थे । हरिजन आश्रम अनाथ संस्था बन गई थी । ५०-६० हजार

रूपये का खर्च था । मेरे पास तो कोई पहचान भी नहीं, किन्तु श्री ठक्करबापा ने कहा'' मैं तो पूरे हिन्दुस्तान में घूम रहा हूँ । तुझे मदद में आ सकूं ऐसा नहीं है, किन्तु मुझे विश्वास है कि तुझसे आश्रम का काम बनेगा । तू मंत्री बन ।'

नवसारी में - गायकवाड़ी में जेल में भेजने का सब कार्यक्रम आश्रम में तय होता; किन्तु वहाँ तो सी.आई.डी. आदि बिठाये थे, वहाँ से सब रिपोर्ट कमिश्नर को पहुँचती थी । मैं वहाँ पहुँचा । सब के साथ झगड़ा । मैंने कहा 'यहाँ आश्रम में यह सब सरकारी कार्यवाही नहीं चल सकती ।' वे बहस करते कि सब चलने देते हैं, आप क्यों मना करते हो ? तब भी बहुत लड़कर सब को निकाला ।

आश्रमनिर्वाह का खर्च मासिक पाँच से सात हजार रुपये आता । क्या खिलायेंगे यह प्रश्न था । ठक्करबापा तो फिरते रहते, इसलिए उनके साथ पत्रव्यवहार भी सम्भव न था । इससे मेरी साधना की गाढ़ता में फर्क पड़ा । आश्रम बंद कर देने का मुझे मन हुआ ।

एक दिन आश्रम के लड़कों को लेकर सूपा गुरुकुल नजदीक गया था, वहाँ गुरुमहाराज ने उपस्थित होकर कहा 'इस जगत को तू या तेरा बाप खिलाता है ? तू जो करता है वह कर' । इससे मुझे निश्चिंतता हुई । इतने में एक दिन रमणलाल वसंतलाल देसाई आश्रम के पास से गुजरे थे । वे गायकवाड़ राज्य के सूबेदार थे । मुझे उनके साथ पहले का संबंध था । वे मेरे यहाँ ठहरे । मैंने उनको सब बात बताई । पुलिस को हटाने का कहा । उन्होंने अपनी सत्ता का उपयोग करके सब दूर किया ।

संस्कार के लिए

अगर हम रागद्वेष फीके करते जायेंगे और इसके साथ परोपकार के कार्य करेंगे तो संसार के कामों में भी भगवान की मदद मिलती रहेगी । कोई हमारे साथ कैसे भी व्यवहार करे फिर भी हमें तो प्रेम रखना है । इस बात की परीक्षा करनी हो तो प्रयोग करके देखो । गुरु के प्रति प्रेम रखना चाहिए-भक्ति रखनी चाहिए । प्रभुकृपा से मेरी बात समझो, और इसका अभ्यास करो । भगवान की शक्ति प्राप्त होगी । इसके लिए संस्कार पड़ेंगे, इसलिए इस ''मौनमंदिर'' की रचना है ।

यहाँ के पड़े संस्कार गहरे होते हैं । वे मिटते नहीं हैं । वे सूक्ष्म में पड़ते हैं । ये संस्कार अधिक से अधिक पड़ते रहे और उसका और उन्हें सूक्ष्म शरीर धारण करता है तो उसके अनुसार उसका निर्माण होता है । ये Divine (दिव्य) दैवी संस्कार हैं, ये उत्तम प्रकार की भावना के संस्कार हैं ।

सब के साथ सुमेल से बरतें । **बलपूर्वक नहीं, परंतु समझपूर्वक सहन करने में तप है ।** हम कुछ उच्च प्रकार के भक्त नहीं हैं, किन्तु इस तरह की भावना से बरतने से उत्तम प्रकार के संस्कार जागृत हो सकेंगे । केवल मन में शांति रहे, इतना भी अगर आप चाहते हों तो उसके लिए दिल में दिल का संबंध रखें ।

दिनांक ११-७-१९६१

॥ हरिः ॐ ॥

आरती

ॐ शरणचरण लीजिए, प्रभु शरणचरण लीजिए
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए...
ॐ शरणचरण.

मन-वाणी के भाव आचरण में उतरें प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें...ॐ शरणचरण.

सभी स्वजनों के साथ, दिल में सद्‌भाव जगें, प्रभु (२)
भले अपमान हुए हों (२) तब भी भाव बढ़े...ॐ शरणचरण.

हीन प्रकार की वृत्ति; ऊर्ध्वगमन करने, प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें (२) चरणशरण पाने...ॐ शरणचरण.

मन के सकल विचार, प्राणयुक्त वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हो...ॐ शरणचरण.

जैसे भी हो प्रभु, वैसे ही दीखें, प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें...ॐ शरणचरण.

दिल में कुछ भरा हो, उससे सब उलटा, प्रभु (२)
मुझसे कभी न हो (२) ऐसी मति दें...ॐ शरणचरण.

जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहाँ दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचरित करें...ॐ शरणचरण.

मन, मति, प्राण प्रभु । तुम्हारे भाव में तल्लीन रहे, प्रभु (२)
दिल में तेरी भक्ति की (२) लहरे उछलें...ॐ शरणचरण.

– मोटा

हरि:ॐ आश्रम में उपलब्ध हिंदी पुस्तकों का लिस्ट

क्रम	पुस्तक	प्र.आ.
१.	पूज्य श्रीमोटा एक संत	१९९७
२.	कैंसर का प्रतिकार	२००८
३.	सुख का मार्ग	२००८
४.	दुर्लभ मानवदेह	२००९
५.	प्रसादी	२००९
६.	नामस्मरण	२०१०
७.	हरि:ॐ आश्रम (श्रीभगवान के अनुभव का स्थान)	२०१०
८.	श्रीमोटा के साथ वार्तालाप	२०१२
९.	विवाह हो मंगलम्	२०१२
१०.	बालकों के **मोटा**	२०१२
११.	विद्यार्थी **मोटा** का पुरुषार्थ	२०१२
१२.	मौनमंदिर का मर्म	२०१३
१३.	मौनमंदिर का हरिद्वार	२०१३
१४.	मौनएकांत की पगडंडी पर	२०१३
१५.	मौनमंदिर में प्रभु	२०१४

●

English books available at Hariom Ashram Surat. January - 2020

No.	Book	F. E.
1.	At Thy Lotus Feet	1948
2.	To The Mind	1950
3.	Life's Struggle	1955
4.	The Fragrance Of A Saint	1982
5.	Vision Of Life - Eternal	1990
6.	Bhava	1991
7.	Nimitta	2005
8.	Self-Interest	2005
9.	Inquisitiveness	2006
10.	Shri Mota	2007
11.	Rites and Rituals	2007
12.	Namsmaran	2008
13.	Mota for Children	2008
14.	Against Cancer	2008
15.	Faith	2010
16.	Shri Sadguru	2010
17.	Human To Divine	2010
18.	Prasadi	2011
19.	Grace	2012
20.	I Bow At Thy Lotus Feet	2013
21.	Attachment And Aversion	2015
22.	The Undending Odyssey (My Experience Of Sadguru Sri Mota's Grace)	2019
23.	Pujya Shri Mota Glimpses of a divine life (Picture Book)	2020
24.	Genuine Happiness	2021

●

॥ હરિ:ૐ ॥

मौनमंदिर हरिःॐ आश्रम, सुरत